वार्षिक रु. ५० मूल्य रु. ८.००
विवेक-ज्योति
वर्ष ४५ अंक १० अक्तूबर २००७
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

मंगल कामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखःभाग्भवेत्।।

सब सुखी हों।

सब रोगरहित हों।

सब कल्याण का साक्षात्कार करें।

दुःख का अंश किसी को भी प्राप्त न हो।

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अक्तूबर २००७

प्रबन्ध-सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४५
अंक १०

वार्षिक ५०/- **एक प्रति ८/-**

५ वर्षों के लिए – रु. २२५/-

संस्थाओं के लिये वार्षिक ७५/-

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/-

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर (हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

{सदस्यता-शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवायें}

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर – ४९२ ००१ (छ.ग.)

दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
०७७१ - २२२५२६९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

प्रिंट आर्डर - २३,०००

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें —

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दिया जाय।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिए अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कविताएँ इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव **स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर** से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट — **'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़)** के नाम से बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना नाम, पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नं. आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रुपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अतः इसे हमें मत भेजें।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

वैराग्य-शतकम्

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शंभो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ।।८९।।

अन्वय – शंभो एकाकी निःस्पृहः शान्तः दिक्-अम्बरः पाणि-पात्रः कदा कर्म-निर्मूलन-क्षमः भविष्यामि ।

अर्थ – हे शम्भो, वह दिन कब आयेगा, जब मैं एकाकी, विषयों की कामना से रहित, शान्तचित्त तथा दिगम्बर होकर, मात्र अपने हाथों को ही भिक्षापात्र के रूप में उपयोग करके निवास करता हुआ अपने कर्मों का समूल नाश करने में सक्षम हो सकूँगा !

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्षेण संतुष्यतां
यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुः पश्यताम् ।
अत्यागेऽपि तनोरखण्ड-परमानन्दावबोधस्पृशाम्
अध्वा कोऽपि शिवप्रसादसुलभः संपत्स्यते योगिनाम् ।।९०।।

अन्वय – पाणिं पात्रयतां निसर्ग-शुचिना भैक्षेण संतुष्यतां यत्र क्व अपि निषीदतां मुहुः विश्वं बहु-तृणं पश्यताम्, तनोः अत्यागे-अपि अखण्ड-परम-आनन्द-अवबोध-स्पृशां योगिनां शिव-प्रसाद-सुलभ कः-अपि अध्वा संपत्स्यते ।

अर्थ – हाथ ही जिनका भोजन-पात्र है, स्वभाव से पवित्र भिक्षान्न प्राप्त करके ही जो सन्तुष्ट हैं, जो लोग (भवन या शैया की परवाह किये बिना ही, श्मशान या वृक्ष के नीचे) जहाँ कहीं भी निवास कर लेते हैं, जो लोग विश्व को सर्वदा घास-फूस के समान तुच्छ मानते हैं और जो लोग शरीर त्याग करने के पूर्व ही अखण्ड सच्चिदानन्द की अनुभूति कर लेते हैं – महादेव शिव की कृपा से ऐसे ही किसी योगी को उस मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति हो जाती है ।

– भर्तृहरि

मातृ-वन्दना

– १ –

(दरबारी-कान्हरा–कहरवा)

तेरी महिमा अपरम्पार महामाये ।
किसकी है भला बिसात, जो बच पाये ।।

तू ही दुर्गा तू ही काली, तू सृष्टि-विलय करने वाली,
तव करुणा हो तब ही, पद ब्रह्म जीव पाये ।।

पग पग तूने जाल बिछाया, प्राणी फँस मोहित भरमाया,
इससे बचकर वह कैसे, भला निकल पाए ।।

तू ही कृपामयी जब छोड़े, प्राणी भव से नाता तोड़े,
चरणों में चित्त लगाकर, तेरे गुण गाए ।।

– २ –

(भैरवी या जोगिया–कहरवा)

(बँगला भजन 'गो आनन्दमयी हये' का भावानुवाद)

आनन्दमयी होकर माँ, क्यों निरानन्द रखती हो !
बाहर दुख की छाया है, तुम अन्तर में बसती हो ।।

मैं सिवा उन्हीं चरणों के, हूँ नहीं जानता कुछ भी,
पर यम के भय से निशिदिन, काँपा करता हूँ तो भी ।।

सोचा था जग से होकर, निःशंक चला जाऊँगा,
मैं नाम तुम्हारा लेता, गन्तव्य पहुँच जाऊँगा।

पर कभी न मन में आया, था सपने में भी मेरे,
इस भव अथाह सागर में, तुम मुझे डूबा डालोगी ।।

निशिदिन मैं तुम्हें पुकारूँ, पर दुःखराशि न जाए,
अब भी न अगर तारो तो, तव नाम न कोई गाए ।।

– विदेह

समाजवाद के गुण-दोष

स्वामी विवेकानन्द

अद्वैत आश्रम, मायावती द्वारा प्रकाशित State Society and Socialism नामक संकलन में प्रश्नोत्तर के रूप में स्वामीजी के विचारों का संयोजन किया गया है। प्रस्तुत है उसी पुस्तक के महत्वपूर्ण अंशों का हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

प्रश्न – समाजवाद के क्या गुण हैं?

उत्तर – गुण यह है कि बहुत थोड़े यत्न से मनुष्य एक या दो काम अति उत्तम रीति से कर सकते हैं, क्योंकि कई पीढ़ियों से उस काम का दैनिक अभ्यास होता है।[१३७]

उसका लाभ होगा भौतिक सुखों का समान वितरण। ... साधारण शिक्षा का बहुत प्रचार होगा।[१३८]

प्रश्न – समाजवाद के दोष क्या हैं?

उत्तर – परन्तु यह काम वे लोग करते हैं, जिनका जीवन निर्जीव यन्त्र के समान व्यतीत होता है। उनमें मानसिक क्रिया नहीं है, उनके हृदय का विकास नहीं होता, उनका जीवन स्पन्दनहीन है, आशा का प्रवाह बन्द है, उनमें इच्छा-शक्ति की कोई प्रबल उत्तेजना नहीं है, सुख का तीव्र अनुभव नहीं है, न प्रचण्ड दु:ख ही उन्हें स्पर्श करता है; उनकी प्रतिभाशाली बुद्धि में निर्माण-शक्ति कभी हलचल नहीं मचाती, नवीनता की कोई अभिलाषा नहीं है, और न नयी वस्तुओं के प्रति आदर भाव ही है। उनके हृदयाकाश के बादल कभी नहीं हटते, प्रात:कालीन सूर्य की छवि कभी उनके मन को मुग्ध नहीं करती। उनके मन में कभी नहीं आता कि इससे अच्छी भी कोई अवस्था हो सकती है, यदि ऐसा विचार आता भी है तो विश्वास नहीं होता; विश्वास होता है, तो उद्योग नहीं हो पाता। और उद्योग होने पर उत्साह का अभाव उसे मार देता है।

यदि यह निश्चित है कि नियम से रहने से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, यदि परम्परा से चली आयी हुई प्रथा का कठोरता से पालन करना ही पुण्य है, तब बताओ वृक्ष से बढ़कर पुण्यात्मा कौन हो सकता है, और रेलगाड़ी से बढ़कर भक्त और महात्मा कौन है? किसने पत्थर के टुकड़े को प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते हुए देखा है? किसने गाय-भैंस को पाप करते हुए जाना है? यंत्रचलित अति-विशाल जहाज और महा-बलवान रेल का इंजन जड़ हैं, वे हिलते हैं और चलते हैं, पर वे जड़ हैं। और जो नन्हा-सा कीड़ा अपने जीवन की रक्षा के लिये रेल की पटरी से हट गया, वह क्यों चैतन्य है? यंत्र में इच्छा शक्ति का कोई विकास नहीं है। यंत्र कभी नियम का उल्लंघन करने की कोई इच्छा नहीं रखता। कीड़ा नियम का विरोध करना चाहता है और नियम के विरुद्ध जाता है, चाहे उस प्रयत्न में वह सफल हो या असफल; इसलिये वह चेतन है। जिस अंश में इच्छा-शक्ति के प्रकट होने में सफलता होती है, उसी अंश में सुख अधिक होता है और जीव उतना ही ऊँचा होता है।[१३९]

प्रश्न – क्या आप एक समाजवादी हैं?

उत्तर – मैं समाजवादी हूँ, परन्तु इसलिये नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, बल्कि इसलिये कि पूरी रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है।[१४०]

प्रश्न – यदि समाजवाद केवल आधी रोटी है, तो फिर आपके सुझाव क्या हैं?

उत्तर – यह कार्य ऐसा है, जिसकी प्रवृत्ति साम्य और एकत्व की ओर है तथा जिससे विविधता का विनाश नहीं होता।[१४१] यदि ऐसा राज्य स्थापित करना सम्भव हो, जिसमें ब्राह्मण युग का ज्ञान, क्षत्रिय युग की सभ्यता, वैश्य युग का प्रचार-भाव और शूद्र युग की समानता रखी जा सके – उनके दोषों को त्याग कर – तो वह एक आदर्श राज्य होगा।[१४२]

प्रश्न – क्या देश का नेतृत्व कुछ सेवाभावी लोगों के हाथ में रहे, या लोग मतदान द्वारा अपने नेताओं को चुनें?

उत्तर – रामचन्द्र, युधिष्ठिर, धर्माशोक अथवा अकबर जैसे राजा हों भी तो क्या? किसी मनुष्य के मुँह में यदि सदा कोई दूसरा ही अन्न डाला करता हो, तो उस मनुष्य की स्वयं हाथ उठाकर खाने की शक्ति क्रमश: लुप्त हो जाती है। सभी विषयों में जिसकी रक्षा दूसरों द्वारा होती है, उसकी आत्मरक्षा की शक्ति कभी स्फुरित नहीं होती। सदा बच्चों की भाँति पलने से बड़े बलवान युवक भी लम्बे कदवाले बच्चे ही बने रहते हैं। देवतुल्य राजा की बड़े यत्न से पाली हुई प्रजा भी कभी स्वायत्त-शासन (Self-government) नहीं सीखती। सदा राजा का मुँह ताकने के कारण वह धीरे-धीरे कमजोर और निकम्मी हो जाती है। यह पालन और रक्षण ही बहुत दिनों तक रहने से सत्यानाश का कारण होता है।[१४३]

निर्वाचन तथा रुपये-पैसे के हिसाब और चर्चा करने को मैं बार-बार इसलिये कहता हूँ कि जिससे और लोग भी कार्य करने के लिये तैयार रहें। एक की मृत्यु हो जाने पर अन्य दूसरा कोई व्यक्ति, एक ही क्यों आवश्यकता पड़ने पर दस
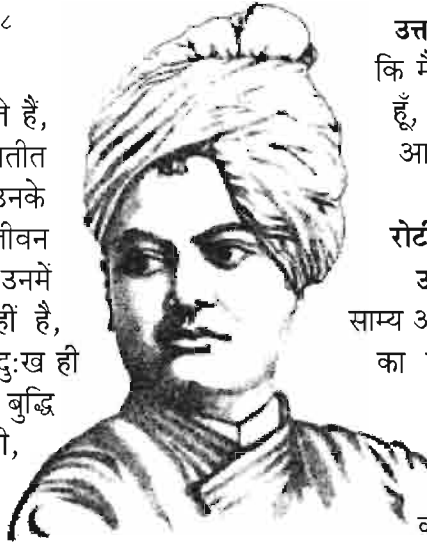
व्यक्ति, कार्य करने को प्रस्तुत रहें। दूसरी बात यह है कि कोई भी व्यक्ति तब तक अपनी पूरी शक्ति के साथ कार्य नहीं करता है, जब तक उसमें उसकी रुचि न पैदा की जाय, सभी को यह बतलाना उचित है कि कार्य तथा सम्पत्ति में प्रत्येक का हिस्सा है तथा कार्य-प्रणाली में अपना मत प्रकट करने का सभी को अधिकार है।[१४४]

प्रश्न – आर्थिक नियोजन का क्या लक्ष्य हो – प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाना, कुल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि, आदि?

उत्तर – याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है। ... राष्ट्र की भावी उन्नति ... आम जनता की अवस्था पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? ... यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही।[१४५]

भारतीय श्रम एवं उत्पादन से भारत की वर्तमान आबादी की पाँच गुनी आबादी का भी आसानी से निर्वाह हो सकता है, यदि भारतीयों की सारी वस्तुएँ उनसे छीन न ली जायें।[१४६]

जापानी लोग वर्तमान जरूरतों के प्रति पूर्ण सचेत हो गये हैं। उनकी एक पूर्ण सुव्यवस्थित सेना है, जिसमें उन्हीं के अफसर द्वारा आविष्कृत तोपें काम में लायी जाती हैं और जो अन्य देशों की तुलना में किसी से कम नहीं हैं। ये लोग अपनी नौसेना बढ़ाते जा रहे हैं। मैंने एक जापानी इंजीनियर की बनायी करीब एक मील लम्बी सुरंग देखी है। दियासलाई के कारखाने तो देखते ही बनते हैं। अपनी जरूरत की सभी चीजें अपने देश में ही बनाने के लिये ये लोग तुले हुए हैं। चीन और जापान के बीच में चलनेवाली एक जापानी स्टीमर लाइन है, जो कुछ ही दिनों में मुम्बई और याकोहामा के बीच यात्री-जहाज चलाना चाहती है।[१४७]

प्रश्न – आर्थिक नियोजन में किस चीज को प्राथमिकता दी जानी चाहिये?

उत्तर – मैं समझता हूँ कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जन-समुदाय की उपेक्षा है, और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। हम चाहे जितनी ही राजनीति करें, उससे तब तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक कि भारत की आम जनता एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होती।[१४८]

आज आवश्यकता है – विदेशी नियंत्रण हटाकर, हमारे विविध शास्त्रों, विद्याओं का अध्ययन हो और साथ ही अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान भी सीखा जाय। हमें उद्योग-धंधों की उन्नति के लिये यांत्रिक-शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी, जिससे देश के युवक नौकरी ढूँढ़ने के बजाय अपनी आजीविका के लिये समुचित धनोपार्जन भी कर सकें और दुर्दिन के लिये कुछ बचाकर रख भी सकें।[१४९]

एक बार आँखें खोलकर देखो – सोना पैदा करनेवाली भारत-भूमि में अन्न के लिये हाहाकार मचा है। क्या तुम्हारी इस शिक्षा द्वारा उस न्यूनता की पूर्ति हो सकेगी? कभी नहीं। पाश्चात्य-विज्ञान की सहायता से जमीन खोदो, अन्न की व्यवस्था करो – नौकरी द्वारा नहीं – अपनी चेष्टा द्वारा पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से नित्य नवीन उपाय का आविष्कार करके![१५०] ऐसी सुजला-सुफला भूमि में, जिसमें प्रकृति अन्य सभी देशों से करोड़ों गुना अधिक धन-धान्य पैदा कर रही है, जन्म लेकर भी तुम लोगों के पेट में अन्न नहीं, तन पर वस्त्र नहीं! जिस देश के धन-धान्य ने पृथ्वी के अन्य सभी देशों में सभ्यता का विस्तार किया है, उसी अन्नपूर्णा के देश में तुम लोगों की ऐसी दुर्दशा! तुम लोग घृणित कुत्तों से भी बदतर हो गये हो! तो भी अपने वेद-वेदान्त की डींग हाँकते हैं। जो राष्ट्र आवश्यक अन्न-वस्त्र का भी प्रबन्ध नहीं कर सकता और दूसरों के मुँह की ओर ताक कर ही जीवन व्यतीत कर रहा है, उस राष्ट्र का यह गर्व! धर्म-कर्म को तिलांजलि देकर पहले जीवन-संग्राम में कूद पड़ो। भारत में कितनी चीजें पैदा होती हैं। विदेशी लोग उसी कच्चे माल से 'सोना' पैदा कर रहे हैं। और तुम लोग भारवाही गधों की भाँति उनका माल ढोते मरे जा रहे हो। भारत में जो चीजें उत्पन्न होती हैं, विदेशी उन्हीं को ले जाकर अपनी बुद्धि से अनेक प्रकार की चीजें बनाकर सम्पन्न हो गये; और तुम लोग! अपनी बुद्धि सन्दूक में बन्द करके घर का धन दूसरों को देकर 'हा अन्न', 'हा अन्न' करते भटक रहे हो।[१५१]

प्रश्न – आर्थिक नियोजन की रणनीति के पीछे क्या दृष्टिकोण हो?

उत्तर – लोगों को शिक्षित करें ताकि वे स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सकें। ... नये युग का विधान है कि जनता ही जनता का परित्राण करे।[१५२]

लोगों को यदि आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा न दी जाय, तो सारे संसार की दौलत से भी भारत के एक छोटे से गाँव की सहायता नहीं की जा सकती।[१५३]

❖ (क्रमशः) ❖

सन्दर्भ-सूची –

१३७. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९), खण्ड ७, पृ. ३५८; **१३८**. वही, खण्ड ५, पृ. ३८६; **१३९**. वही, खण्ड ७, पृ. ३५८; **१४०**. वही, खण्ड ५, पृ. ३८७; **१४१**. वही, खण्ड ९, पृ. ३११; **१४२**. खण्ड ५, पृ. ३८७; **१४३**. वही, खण्ड ९, पृ. २०३; **१४४**. वही, खण्ड ६, पृ. ४०८; **१४५**. वही, खण्ड २, पृ. ३२१; **१४६**. वही, खण्ड ७, पृ. ३८२; **१४७**. वही, खण्ड १, पृ. ३९८; **१४८**. वही, खण्ड ४, पृ. २६०; **१४९**. वही, खण्ड ८, पृ. २२१; **१५०**. वही, खण्ड ६, पृ. १५५; **१५१**. वही, खण्ड ६, पृ. १०४; **१५२**. वही, खण्ड ४, पृ. २५५; **१५३**. वही, खण्ड ६, पृ. ३५०

श्रीराम-वाल्मीकि-संवाद (१६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(आश्रम द्वारा १९९६-९७ में आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती-समारोहों के समय पण्डितजी ने उपरोक्त विषय पर जो प्रवचन दिये थे, यह उसी का अनुलेख है। टेप से इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है। – सं.)

भरत की महिमा और लक्ष्मण का स्नेह – भगवान श्रीराम दोनों को समान महत्त्व देते हैं। इसलिए प्रभु ने लक्ष्मण को बुलाया और सीताजी ने अपने पास बिठा लिया। दोनों उनके सिर पर हाथ फेरने लगे, पीठ थपथपाने लगे – "वाह, वाह, बहुत अच्छे !" दोनों लक्ष्मण को शाबासी दे रहे हैं –

राम सीय सादर सनमाने ।।

किसी की बात काटनी भी पड़े, तो कैसे काटें। हम कह सकते हैं कि तुम गलत कह रहे हो; तुम्हारी बात बिलकुल ठीक नहीं है। परन्तु भगवान ने इसका श्रीगणेश कैसे किया ! बोले – "लक्ष्मण, सचमुच, तुम के राजनीति पण्डित हो। तुमने बड़ी उत्तम बात कही।" लगा कि प्रभु भी समर्थन कर रहे हैं कि तुमने ठीक ही तो कहा। परन्तु वे धीरे-धीरे बदलते गये। यही प्रभु के बोलने की शैली है और यही उनका शील है। बोले – सचमुच, संसार में राजमद बड़ा ही कठिन है –

कही तात तुम्ह नीति सुहाई ।
सब तें कठिन राजमदु भाई ।।

प्रभु ने रामपद नहीं, बल्कि कहा राजपद का मद बड़ा कठिन है। लगा कि वे लक्ष्मण का समर्थन कर रहे हैं। फिर समर्थन का एक वाक्य और बोल दिया – जो राजा इस राज्य पद की सुरा को पीते हैं, वे उन्मत्त हो जाते हैं –

जो अचवँत नृप मातहिं तेई ।

परन्तु अब वे बात को बदलने लगे। भरत के सन्दर्भ में सत्य क्या है? बोले – "लक्ष्मण, तुम जो कह रहे हो, वह सही तो है, नीति भी यही है और अनुभव भी यही बताता है, लेकिन तुम जानते हो, समझ सकते हो कि कोई ऐसा व्यक्ति भी तो हो सकता है, जो राज्य पाकर भी उन्मत्त न हो ! मैं तो समझता हूँ कि जिसने साधु-सज्जनों का संग न किया हो, वही उन्मत्त होता होगा। जो सत्संगी है, साधुसंग सेवी है, वह कभी भी राज्य पद पा कर उन्मत्त नहीं होगा।"

नाहिन साधु सभा जेहिं सेई ।।

और भरत कैसे हैं? प्रभु जब भरत की प्रशंसा करते हैं, तो ऐसा लगता है कि कोई ऐसा वाक्य या दृष्टान्त नहीं था, जो उन्होंने भरत के लिए न कहा हो। वे बोले – लक्ष्मण, जो तुमने कहा, वह संसार के लोगों के लिए तो बिलकुल ठीक है, पर भरत के विषय में तो मेरा मानना है कि अगर अन्धकार सूर्य को निगल जाय, सूर्य पश्चिम से उदय हो जाय। पृथ्वी भी क्षमा को छोड़ दे। प्रकृति के सारे नियम बदल जाय, परन्तु भरत कदापि बदल नहीं सकता –

तिमिरु वरुन तरनिहि मकु गिलई ।
गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ।।
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी ।
सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ।।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई ।
होइ न नृपमदु भरतहिं भाई ।। २/२३२/१-३

भरत में मद ! लक्ष्मण, अयोध्या के राजपद का उसे क्या मद होगा ! मेरा तो विश्वास है कि यदि भरत को ब्रह्मा का पद मिल जाय, विष्णु का पद मिल जाय, शिव का पद मिल जाय, तो भी उसमें कोई अन्तर नहीं आयेगा।

इसके लिये उन्होंने दृष्टान्त क्या दिया? किसी ने सुन लिया कि दूध की हंडी में यदि काँजी डाल दें, खटाई डाल दें, तो वह फट जाता है। उसने सोचा कि यदि हम दूध के समुद्र में खट्टी कांजी डाल दें, तो पूरा क्षीर-सागर ही फट जायेगा। परन्तु वह कितने ही बड़े-बड़े घड़ों में खट्टी काँजी भरकर समुद्र में डाल दे, तो उसमें क्या अन्तर पड़ेगा। क्षीर-सागर कभी नष्ट हो सकता है। भरत क्षीर-समुद्र के समान हैं और ये सारे पद उसके लिए काँजी की बूँदों के समान हैं –

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ।। २/२३१

भरत में किसी भी पद से मद नहीं आ सकता, परिवर्तन नहीं आ सकता। श्रीराम जैसे लक्ष्मणजी के प्रेम को सम्मान देते हुए भी भरत की महिमा का बखान करते हैं, यही उनका शील है। और लक्ष्मण भी धन्य हैं ! कई लोग अपनी बात पर अड़ जाते हैं। किसी को बुरा मान लिया, तो अन्त तक यही कहते रहेंगे कि वह तो बुरा ही है। उन्हें लगता है कि मेरी बात गलत कैसे हो सकती है ! परन्तु धन्य हैं लक्ष्मण ! वे सुनकर भी तो तर्क कर सकते थे कि आप अपने भोलेपन से ऐसा कह रहे हैं। परन्तु भरतजी के गुण तथा स्वभाव का वर्णन करते हुए प्रभु तो प्रेम-समुद्र में निमग्न हो गये थे –

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ ।
प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ।। २/२३२/८

लक्ष्मणजी भी प्रेम से अभिभूत हो उठे। वे गद्गद होकर सोचने लगे – भरत के विषय में अनजाने में न जाने क्या-क्या कितना कुछ कह बैठा! धन्य है भाई भरत, जिनके चरित्र में इतनी ऊँचाई है और जिनके प्रेम का वर्णन करते-करते प्रभु स्वयं प्रेमसमुद्र में डूब गये! उस समय लक्ष्मणजी और सीताजी भी भरत के उस प्रेम-समुद्र में समा जाते हैं।

प्रभु से प्रश्न किया जा सकता था कि भरत का जन्म भी तो संसार में हुआ है। संसार गुण-दोष से मिलकर बना हुआ है और इस गुण-दोषमय संसार में अच्छे व्यक्ति में भी यदि दोष आता है, तो वह प्रकृति के नियम के अनुकूल है। भरत यदि संसार में हैं, तो ऐसी स्थिति में भरत में कमी क्यों नहीं आ सकती। तब प्रभु ने भरत के हंसत्व का वर्णन करते हुए कहा – सत्य तो यही है। ब्रह्मा ने जगत् को गुण के रूप में दूध और अवगुण के रूप में जल को मिलाकर बनाया है –

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता।
मिलई रचइ परपंचु बिधाता।। २/२३२/५

पर भरत? बोले – भरत तो हंस है। सूर्यवंश सरोवर है, और भरत हंस है। मेरा भाई भरत तो हंस है, जिसने प्रकृति के नियम को परिवर्तित करके, अवगुणों के जल को अलग करके गुणों के दूध को अपने आप में अन्तस्थ कर लिया है, अपने जीवन में क्रियान्वित कर लिया है –

भरतु हंस रबिबंस तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी।
निज जस जगत कीन्हि उजिआरी।। २/२३२/६-७

प्रभु द्वारा भरत के लिए हंस शब्द का प्रयोग किया जाता है और उसको सुनकर लक्ष्मणजी गद्गद हो जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि जिस हंसत्व की बात कहते हैं, उसे अगर हम किसी में पूरी तरह चरितार्थ देखना चाहें तो वे भरतजी ही हैं।

भीष्म पितामह के सामने समस्या यह है कि वे जानते हैं कि बुराई क्या है और अच्छाई क्या है, पर वे दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ पाते। युधिष्ठिर के प्रणाम करने पर उन्होंने जो शब्द कहा, वह बड़ा विचलित कर देनेवाला है। वे बोले – "**अर्थस्य पुरुषो दासो –** मनुष्य धन का दास है। मैं दुर्योधन के द्वारा सेवित रहा, उसी के द्वारा ही रक्षित रहा, अत: चाहते हुए भी मैं तुम्हारी ओर से युद्ध नहीं कर सकता।" उनके धर्म की मान्यता है कि दुर्योधन अन्यायी है, तो भी मैं तो उधर से ही लड़ूँगा। जानकर भी वे बाध्य हैं और यह एक बहुत बड़ी कमी है। यदि आप बुराई को बुराई जानकर भी उसे छोड़ नहीं सकते, तो आपके धर्मज्ञान में कहीं-न-कहीं कमी है।

महाभारत में लिखा है कि भगवान श्रीकृष्ण भीष्म पितामह का बड़ा सम्मान करते हैं। युद्ध समाप्त होने के बाद उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि हम सभी को चलकर पितामह से धर्म और राजनीति की शिक्षा लेनी चाहिए। सब लोग उनके पास गये और भीष्म पितामह जब उपदेश देने लगे, तो द्रौपदी हँस पड़ीं। द्रौपदी में शील का तत्त्व नहीं था। वे बड़ी तेजस्वी थीं, बड़ी मुखर थीं, युद्ध में उनकी बहुत बड़ी भूमिका थी।

पितामह उपदेश दे रहे हैं और द्रौपदी हँसने लगीं, तो लोग चौंक पड़े। इतना गम्भीर प्रवचन चल रहा है और वे हँस रही हैं। पितामह ने ही पूछा – पुत्री, तुम्हें हँसी कैसे आ गई? उन्होंने कहा – पितामह, जब मेरा चीरहरण किया जा रहा था और मैंने पूछा कि जो कुछ हो रहा है, वह धर्म है या अधर्म, न्याय है या अन्याय, उस समय आपकी यह प्रवचन-बुद्धि कहाँ चली गई थी? तब आप क्यों नहीं बता सके?

भीष्म मौन रह गये। इतने महान् व्यक्ति होकर भी दुर्योधन की निन्दा करना या उसे छोड़ना तो दूर रहा, इतना भी निर्णय नहीं कर पाए कि द्रौपदी को हारने का अधिकार युधिष्ठिर को था या नहीं। पितामह बड़े महान् व्यक्ति थे। अब बोले – पुत्री, तुम ठीक कहती हो, दुर्योधन का अन्न खाने से मेरे रक्त में मानो एक कमी आ गई थी, जिससे मेरी यह भूल हुई। अन्न अर्थात् प्रलोभन। आप सत्य बोलना चाहें और मानो कोई आपके मुँह में रसगुल्ला रख दे। इस कमी को भीष्म समझ रहे थे। इधर भरत के सामने तो इतना सब था, परन्तु उन्होंने केवल राज्य ही नहीं, बल्कि अपनी माता को भी यह कहते हुए छोड़ दिया – "तेरे हृदय में ऐसा भाव उठते ही तेरे हृदय के टुकड़े क्यों नहीं हो गये! ऐसा वर माँगते समय तेरे मन में पीड़ा क्यों नहीं हुई! मुख में कीड़े क्यों नहीं पड़ गये! जीभ क्यों नहीं गल गयी!" –

जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ।
खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ।।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा।
गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा।। २/१६२/१-३

माँ का परित्याग करने में उन्हें एक क्षण भी नहीं लगा। कोई बहाना नहीं बनाया कि क्या करूँ, माँ है? सीधे परित्याग कर देते हैं। पिताजी ने कहा है तो क्या! राज्य का परित्याग कर देते हैं। हंस की वह वृत्ति यदि किसी में चरितार्थ होती है, तो भरतजी में ही होती है। प्रभु ने कहा – भरत ही हंस हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि मानसरोवर में तीन प्रकार के हंस हैं – ज्ञान, वैराग्य तथा विचार के हंस। और हंस के ये तीनों गुण यदि देखना हो, तो वे आपको भरतजी के चरित्र में ही मिलेंगे। तीनों देख लीजिए – ज्ञान, वैराग्य और विचार। भरतजी के गुणों के सन्दर्भ में कहा गया है – उनके गुणों की कोई सीमा नहीं। भगवान राम जब भरत के गुण गाने लगते हैं, तो कहते हैं – गुणों में, भरत तो भरत के ही समान हैं –

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु
भरतु भरत सम जानि।। २/२८८

श्रीराम और श्रीभरत – ये दो महानतम शीलवान हैं। भगवान राम जब भरत के शील की, गुणों की प्रशंसा करते हैं, तो गद्‌गद हो जाते हैं। कहते हैं कि भरत के समान गुणवान तो कोई हुआ ही नहीं। और भरतजी को अपने आप में गुण दिखाई देता है या नहीं? जिन भरत रूपी हंस में इतने गुण हैं, जिनकी चारों ओर इतनी प्रशंसा होती है, जिनके गुणानुवाद गाये जाते हैं, उन्हें कैसा लगता है?

विडम्बना तो यह है कि गुणवान लोगों को सबसे अधिक अपना ही गुण दिखाई देता है। कम हो, तो भी अधिक दिखाई देता है। न भी हो, तो कल्पना से दिखाई देता है। व्याख्या करके दिखाई देता है। व्यक्ति स्वयं तो अपने गुण देखता ही है और यदि दूसरे लोग प्रशंसा करने लगें, तब तो उसका अभिमान चौगुना सौगुना बढ़ जाता है।

परन्तु श्रीभरत जब अयोध्या के राज्य का परित्याग करके चित्रकूट की ओर जा रहे हैं, उस समय उनके त्याग की, उनके वैराग्य की, उनके शील की, उनकी विनम्रता की, उनके धर्म-ज्ञान की प्रशंसा हो रही है, और जब उन्होंने तीर्थराज प्रयाग में प्रवेश किया; उस समय ब्रह्मचारियों ने सुना, वानप्रस्थियों ने सुना, गृहस्थों ने सुना, संन्यासियों ने सुना कि भरतजी श्रीराम के पास चित्रकूट जा रहे हैं, तो वे मार्ग में खड़े हो जाते हैं और उनका स्वागत करते हैं –

प्रमुदित तीरथराज निवासी ।
बैखानस बटु गृही उदासी ।।
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा ।
भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ।। २/२०६/१-२

ब्रह्मचारी कहते हैं – धन्य हैं भरत ! गृहस्थ कहते हैं – धन्य हैं भरत ! वानप्रस्थी और संन्यासी कहते हैं – भरत के समान आदर्श कौन होगा ! वस्तुतः ब्रह्मचारी का जीवन अलग प्रकार का होता है, गृहस्थ का जीवन उससे अलग होता है, वानप्रस्थी का जीवन भिन्न प्रकार का होता है और संन्यासी का जीवन सबसे विलक्षण होता है। अपने-अपने स्थान पर चारों आश्रम श्रेष्ठ हैं। एक गृहस्थ की मर्यादा और एक संन्यासी की मर्यादा में बड़ी भिन्नता है, तथापि दोनों अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं।

जब मैं वृन्दावन धाम में श्री उड़िया बाबा के चरणों में रह रहा था, तो एक भक्त आए और उन्होंने बड़े प्रेम से बाबा को निमंत्रण-पत्र दिया। बोले – बाबा, हमारा तो सारा जीवन ही आपकी कृपा से संचालित है, विवाह में अवश्य पधारिए। बाबा बोले – मेरा खूब आशीर्वाद है, पर मैं समझता हूँ कि मेरा न आना ही उचित होगा। भक्त – महाराज, आप नहीं आएँगे, तो हमारा विवाह का यज्ञ कितना अधूरा होगा ! बाबा हँसकर बोले – देखो भाई, तुम्हारे भाव की हम सराहना करते हैं, पर तुम्हारे यहाँ मेरा आना तो बिलकुल ठीक नहीं होगा। – क्यों? बोले – "मैं अकेला नहीं हूँ, ये ब्रह्मचारी हैं, साधक हैं, ये भी तो मेरे साथ आयेंगे। एक ओर तो वहाँ दूल्हे का स्वागत होगा और मैं पहुँचूँगा, तो सारे लोगों का ध्यान तो मेरी ओर चला जायेगा। तुम भी मेरी पूजा करने लगोगे, दूल्हे से भी प्रणाम कराओगे। उस दृश्य को देखकर यदि दूल्हे को लगा कि संन्यासी होना ही अच्छा है। क्या पूजा हो रही है ! कहाँ मैं झंझट में फँस रहा हूँ ! तो तुम्हारा तो विवाह ही व्यर्थ हो जायेगा। और साथ-ही वहाँ का वह राग-रंग-उत्सव देखकर कहीं मेरे साथ के साधक ब्रह्मचारियों को लगे कि कहाँ पड़े हैं हम, जरा विवाह करके इसका भी तो आनन्द ले लें। तो दोनों न मिलें, यही ठीक है।"

इसका अर्थ यह है कि आदर्श अलग-अलग हैं। एक संन्यासी का वस्त्र और एक गृहस्थ का वस्त्र – अलग-अलग प्रकार के होते हैं, रहनी अलग प्रकार की होती है। जैसे संन्यासी रहता है, वैसे गृहस्थ को नहीं रहना चाहिए। जैसे गृहस्थ रहता है, वैसे संन्यासी को नहीं रहना चाहिए –

सोचिय गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।
सोचिय जती प्रपंचरत बिगत विवेक बिराग ।।

भरतजी की विशेषता क्या है? ब्रह्मचारी को लगता है कि भरतजी से उत्तम ब्रह्मचारी कोई नहीं है, गृहस्थ को लगता है कि भरतजी जैसा कोई गृहस्थ ही नहीं है, वानप्रस्थी सोचता है कि वानप्रस्थ आश्रम को साकार देखना है, तो भरतजी को देख लो और महानतम संन्यासी को लगता है कि भरतजी के समान सच्चा संन्यासी आज तक देखने को नहीं मिला। ऐसे विलक्षण गुण हैं भरतजी में। ब्रह्मचर्य का जो सच्चा अर्थ है, उसे यदि आप चरितार्थ देखना चाहें तो भरतजी के जीवन में देखें। उनके लिए ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। उन अर्थों में वे ब्रह्मचारी भी नहीं हैं। उनका विवाह भी हुआ है। पर ब्रह्मचारी का तात्पर्य तो अन्ततोगत्वा यही है – जो ब्रह्म में विचरण करे, ब्रह्म में रमण करे। विवाह करके व्यक्ति नारी में रमण करता है। ब्रह्मचारी वह है, जो ब्रह्म में रमण करे। उस रमण के लिए, वह भौतिक – शारीरिक रमण से मुक्त है। भरतजी गृहस्थी के रूप में राज्य का प्रबन्ध करते हैं, परन्तु इसके बावजूद वे रहते कहाँ हैं?

जब चित्रकूट जाने की बात उठी, तो सब लोग जाने के लिए उतावले हो गये। प्रश्न उठा कि अयोध्या के घरों की रक्षा के लिए किसी को रुकना चाहिए या नहीं। जिस बेचारे से कहा जाता कि भाई, तुम जरा रुक जाओ, घर में भी तो कोई देखने वाला चाहिए, तो उस बेचारे को तो ऐसा लगता था कि मेरा तो सिर काट लिया गया –

जेहि राखहिं रहु घर रखवारी ।
सो जानई जनु गरदन मारी ।। २/१८५/६

समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाय ! कुछ लोगों

ने भावावेश में आकर कहा – अयोध्या के सारे घरों को आग लगा दो, सारी सम्पत्ति को नष्ट कर दो। इस सम्पत्ति को, उस घर को लेकर अब क्या करेंगे !

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ।। २/१८५

कुछ लोग कह रहे थे – रखवाले रखो; राम के पास चलेंगे, तो घर भी तो बचा रहे। दूसरा दल कह रहा था – अरे छोड़ो, क्या होगा घर-सम्पत्ति रखकर, सब जलाओ और श्रीराम के पास चलो। अब भरतजी निर्णय करें – रखवाला रखें या नहीं? संन्यासी ने तो सब कुछ छोड़ दिया है।

उड़िया बाबा वह बड़ा प्रसिद्ध उपाख्यान कहा करते थे। एक बहुत बड़े विरक्त महात्मा थे। कोई कर्म नहीं करते थे। बस, निश्चेष्ट भाव से रहते थे। पर एक दिन मन में आया कि यह शरीर शिथिल है, तो कहीं रुकना चाहिए। वे निकले तो पुकारते जाते थे – "कबर है कबर?" कबर – जहाँ मुर्दे गाड़े जाते हैं। लोग समझ नहीं पा रहे थे कि ये महात्मा – कबर है कबर? – यह क्या नारा लगा रहे हैं। उनके इस नारे का अर्थ यह था कि जैसे हम मुर्दे से आशा नहीं रखते, वैसे ही क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो बदले में मुझसे कुछ न चाहे और कबर में जैसे रख दिया जाता है, वैसे ही मुझे रख ले।

सहसा एक गृहस्थ बोल पड़े – "मुर्दा है मुर्दा?" बात दोनों की समझ में आ गई। मुर्दा और कबर। वे उसी गृहस्थ के यहाँ रुक गये। वे उसके गार्हस्थ्य जीवन में कोई सहयोग देते नहीं थे। कोई कार्य करते नहीं थे। गृहस्थ भी बड़ा सत्संगी था। कहा – कबर तो है, पर देखें कि यह मुर्दा है या नहीं? महात्माजी सचमुच कुछ नहीं करते थे।

एक रात उस घर में चोर आये। गृहस्थ और घर के लोग तो सो रहे थे। महात्माजी अपने ध्यान में जग रहे थे। उन्होंने चोरों को देखा तो पुकारा – "अरे उठो, चोर आये हैं।" चोरों ने सुना तो भाग निकले। गृहस्थ की सम्पति बच गई। पर गृहस्थ ने तत्काल एक बड़ी ऊँची बात कही। उसने महात्मा से पूछा – "मुर्दा सच या कबर सच?" महात्माजी बोले – "कबर सच। मुर्दा सच नहीं निकला।" अर्थात् आप मुर्दा थे, तो आपको मेरी सम्पत्ति के चोरी जाने की चिन्ता क्यों हुई? महात्मा तुरन्त उस गृहस्थ का घर छोड़कर चले गये। बोले – "अभी मुर्दावाली स्थिति आई नहीं है। हम कह तो रहे थे, पर कहीं-न-कहीं हम तुम्हारे आकर्षण में बँधे हुए थे कि यह इतना खिलाता-पिलाता है, सेवा करता है, कहीं इसकी सम्पत्ति चोरी न हो जाय।" सचमुच ही संन्यास एक कठिन वृत्ति है। संन्यास की वृत्ति का अर्थ है जहाँ किसी वस्तु की जरा भी आकांक्षा है ही नहीं – **तस्य कार्यं न विद्यते**।

उस अवसर पर श्रीभरत ने जो उत्तर दिया वह गृहस्थों को भी प्रिय लगा और संन्यासियों को लगा कि संन्यास की इतनी ऊँची व्याख्या हो ही नहीं सकती। भरतजी बोले – रखवाले अवश्य रखना चाहिए। लगा कि गृहस्थों की तरह भरतजी भी चिन्तित हैं कि लौटने पर अयोध्या की सम्पत्ति ज्यों-की-त्यों मिले। पर भरतजी बहुत आगे हैं। जिन लोगों ने कहा – 'चलो, मगर पहरेदार रखें' – वे रागी थे। और जिन्होंने कहा – 'जला दो' – वे त्यागी थे। पर भरतजी न रागी थे, न त्यागी। भरतजी ने कितनी सुन्दर बात कही – अपनी जिस वस्तु से आपको मोह न हो, उसे आप जला दें। तो लोग कहेंगे – इनका अपनी वस्तु पर मोह नहीं है, इन्होंने त्याग कर दिया। पर आप दूसरे के घर को जला दें और कहें कि मेरे मन में कोई मोह-ममता या आकर्षण नहीं है, तो आपको त्यागी मानकर आपकी पूजा होगी या कारागार भेजने का प्रबन्ध किया जायेगा? भरतजी बोले – यहाँ यदि मेरा कुछ भी होता, तो मैं जला देता; पर मेरा कुछ है क्या? जब सारी वस्तुएँ उनकी हैं, तो उन्हें जलाने का अधिकार मुझे कहाँ है?

संपति सब रघुपति कै आही ।

यही सच्चा संन्यास है ! त्याग का अभिमान तक छूट गया है। आप अपनी वस्तु छोड़ें तो त्याग है, दूसरे की वस्तु को छोड़ना त्याग नहीं है। उनके जीवन में चारों आश्रमों के आदर्श साकार हो रहे हैं। ब्रह्मचारी के रूप में भरतजी निरन्तर ब्रह्म में विचरण करनेवाले, ब्रह्म-चिन्तन में निमग्न रहनेवाले हैं; गृहस्थ के रूप में भरतजी राज्य, परिवार तथा समाज का प्रत्येक कार्य सम्पन्न करते हैं; वानप्रस्थी के रूप में वे तपस्या का जीवन बिताते हैं; और संन्यासी का संन्यास भी भरतजी में चरितार्थ हो रहा है। इसीलिए प्रत्येक आश्रमी उनका दर्शन करके अपने लिए प्रेरणा प्राप्त कर रहा है। चारों ओर उनका गुणगान हो रहा है कि भरतजी कितने महान् हैं !

लखन राम सिय कानन बसहीं ।
भरत भवन बसि तप तन कसहीं ।।
दोउ दिसि समझ कहत सब लोगू ।
सब विधि भरत सराहन जोगू ।।

व्यक्ति में अपनी प्रशंसा सुनने की बड़ी व्यग्रता रहती है। इसीलिए रावण के छोटे भाई को कुम्भकर्ण कहा गया है। गोस्वामीजी ने कहा – कुम्भकर्ण अभिमान है। कुम्भकर्ण अर्थात् घड़े की तरह कान? तो क्या उसके पैर बड़े नहीं थे? क्या उसके अन्य अंग बड़े नहीं थे? यह क्या बात हुई? इसमें व्यंग्य यह है कि अभिमानी का सबसे बड़ा अंग कान ही होता है। स्थूल रूप में नापने मत जाइयेगा कि जिसका कान बड़ा है, तो वह अभिमानी है; छोटा है, तो निरभिमनी है। इसका अर्थ है कि अभिमानी निरन्तर कान खोले रखता है कि कोई उसकी प्रशंसा करे और इसके लिए व्यग्र रहता है।

कोउ कछु कह देऊ कछु कोऊ
यह बासना हृदय ते न जाई ।

प्रशंसा सुनने के लिए मानो व्यक्ति के कान खुले रहते हैं। परन्तु यहाँ जिन भरतजी की सब प्रशंसा कर रहे हैं, वे जब सुन रहे हैं, तो उन्हें कैसा लग रहा है? गोस्वामीजी ने लिखा – प्रशंसा करनेवाले भरतजी की प्रशंसा कर रहे हैं और उन्हें लग रहा है कि सब प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं –

निज गुन सहित राम गुन गाथा ।
चले जाहिं सुमिरत रघुनाथा ।।

ऐसा कान यदि किसी को मिल जाय कि अपनी प्रशंसा सुनाई ही न पड़े। अपनी प्रशंसा में प्रभु की प्रशंसा सुनाई पड़े तो शंकरजी की याद आती है। शंकरजी के सामने किसी ने कहा – 'रावण'। सुनते ही वे गद्गद होकर समाधि में चले गये। किसी ने कहा – 'राजा' समाधि में चले गये। कहा – 'रात्रि' समाधि में चले गये। पार्वतीजी से नहीं रहा गया। बोलीं – यह क्या हुआ? 'रावण' सुनकर समाधि में जाने की क्या बात है! खैर रावण तो आपका चेला है, लेकिन 'रात्रि' और 'राजा'! कहा – महाराज, मैं एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ। पहले वचन दीजिए कि मेरे प्रश्न को पूरा सुनिएगा। समाधि में चले गये, तो मेरा प्रश्न ही नहीं सुनेंगे। – क्या है बोलो? – 'रावण' या 'रात्रि' या 'राजा' – इन शब्दों को सुनकर आप समाधि में क्यों चले जाते हैं? बोले – पार्वती तुमने तो बड़ा अनर्थ कर दिया। आज तक मैंने ये शब्द सुने ही नहीं थे। – सुने नहीं थे? महाराज, मैंने तो सुनते देखा! वे बोले – पार्वती, जब किसी के मुँह से 'र' अक्षर निकलता था, तो मैं यह मान लेता था कि अब यह राम ही बोलेगा और मैं समाधि में चला जाता था। सोचिये, कैसे कान होंगे!

रकारा त्रीणि नामानि श्रृण्वतां मम पार्वती ।
मनः प्रसन्नतां याति रामनामाभिशंकया ।।

तो ऐसे कान हैं शंकरजी के और ऐसे कान हैं भरतजी के कि प्रशंसा करनेवाले भरत की कर रहे हैं और भरत बड़े गद्गद हो रहे हैं – धन्य हैं लोग ये मेरी प्रशंसा नहीं, प्रभु की ही प्रशंसा कर रहे हैं। **गुण तो प्रभु के हैं।** यदि मुझमें किसी को दिखाई दे रहा है, तो जैसे बर्तन में चन्द्रमा दिखाई दे और बर्तन यह मानने की मूढ़ता करे कि यह चन्द्रमा तो मुझमें ही है। धन्य हैं हमारे प्रभु, उनकी दृष्टि की प्रशंसा।

अभिमान व्यक्ति में गुण के द्वारा होता है। प्रशंसा सुनकर अभिमान बढ़ता है। पर भरतजी? भरतजी ने सर्वदा यही माना कि गुण तो प्रभु के हैं। भरतजी के गुणों के साथ बड़ा विस्तृत प्रसंग है। महर्षि भरद्वाज ने कहा – भरत, तुम्हारा यश चन्द्रमा के समान है। पर जैसे चन्द्रमा में कई दोष हैं, वैसे ही संसार के गुणवान व्यक्तियों में भी दोष होते हैं। उन्होंने कई दोष गिनाए। बोले – दिन में चन्द्रमा का प्रकाश न्यून दिखाई देता है, वैसे ही यदि कोई यशस्वी दिखाई देता है, पर कोई उससे बड़ा प्रतापी सूर्य निकल आए, तो वह व्यक्ति क्षीण हो जाता है, पर तुम धन्य हो! उन्होंने कहा – धन्य हो भरत, प्रभु का प्रताप रवि इतना प्रबल है, पर तुम्हारे यश का चन्द्रमा उस सूर्य के प्रकाश में भी ज्यों-का-त्यों है। प्रभु की महिमा के सामने तुम्हारी छवि धूमिल नहीं होती।

नव बिधु बिमल तात जस तोरा ।
प्रभु प्रताप रवि छवि हि न हरई ।।

किसी ने प्रभु से पूछा – महाराज, भरतजी का यश यदि चन्द्रमा है, तो आपके प्रताप के सामने धूमिल क्यों नहीं होता? प्रभु बोले – यह चन्द्रमा सूर्य की एक कमी को दूर कर देता है। – कौन-सी? बोले – सूर्य में प्रकाश तो बहुत है, मगर ताप भी है, अतः सूर्य के साथ चन्द्रमा भी उदित रहे तो प्रकाश के साथ शीतलता बनी रहेगी। मेरे प्रताप के सूर्य से लोग भयभीत हो सकते थे, पर भरत के यश की शीतलता इस सूर्य की कमी को दूर करनेवाली है। इतना विलक्षण उनका चरित्र है; गिनाते हुए कह दिया – चन्द्रमा तो घटता है, पर भरत का यश-चन्द्र दिन-रात बढ़ता जाता है –

नव बिधु बिमल तात जस तोरा ।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
उदित सदा अथई कबहु ना ।
घटइ न जग नभ दिन दिन दूना ।।

और उसके साथ ही एक बड़ी मधुर बात लिख दी – चन्द्रमा पर जैसे ग्रहण लगता है, वैसे ही यशस्वी लोगों के मन में भी कभी-कभी ग्रहण लग जाता है; मगर भरत, तुम्हारे यश-चन्द्रमा में कभी ग्रहण लगा ही नहीं। किसी ने कहा – ग्रहण नहीं लगा होगा, तो इसका अर्थ है कि राहु नहीं होगा। – नहीं, राहु तो बहुत बड़ा था – कैकेयी-रूपी राहु। कैकेयी का सारा कार्य तो राहु के जैसा था, पर भरत, तुम्हारे यश-चन्द्रमा को वह राहु ग्रस नहीं सका –

ग्रसहि न कैकइ कर तब राहू ।।

– क्यों नहीं ग्रस पाया? चन्द्रमा भी था और राहु भी, तब तो ग्रस लेना ही स्वाभाविक है। परन्तु एक नियम है। चन्द्र-ग्रहण किसी भी तिथि को नहीं लगता; वह तो केवल पूर्णिमा को ही लगेगा। भरद्वाज बोले – भरत, तुम्हारा यश दिनो-दिन बढ़ता जा रहा है। भरत के चरित्र में भी यदि पूर्णिमा आ जाय, तो ग्रहण लगे, पर भरत में तो पूर्णता का कोई भान ही नहीं है, दिन-रात बढ़ता ही जा रहा है। राहु प्रतीक्षा कर रहा है कि पूरा हो जाय, तो हम ग्रसें। इस प्रकार भरत का व्यक्तित्व ऐसा अद्भुत है कि भगवान श्रीराम भी उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं – भरत, तुम मुझे सत्यवादी मानते हो या नहीं? – प्रभो, आप सत्यवादी नहीं हैं, आप तो सक्षात् सत्य ही हैं। – तो भरत, मैं तो यही कहता हूँ – तीनों कालों में और तीनों लोकों में जितने पुण्यात्मा हुए हैं और होंगे, वे सभी तुमसे न्यून हैं। उन्होंने भरतजी की ओर

देखा और बोले – शंकरजी की शपथ लेकर कहता हूँ – तुम्हारे समान कोई पुण्यात्मा नहीं है –

तीनि काल त्रिभुअन मत मोरें ।
पुन्य सिलोक तात तर तोरे ।।
कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी ।

प्रभु के पास तर्क था। प्रभु ने कहा – पहले मैं अपने को बड़ा पुण्यात्मा मानता था। – क्यों? बोले – जब मुझे वनवास दिया गया, तो मैंने महर्षि भरद्वाज से यही कहा कि मैंने कितने पुण्य किये होंगे कि मुझे वन दे दिया गया –

तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ ।
मो कह दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाऊ ।।

मुझे लगा कि मेरा पुण्य बहुत था, इसीलिए ऐसा अवसर मिला। मैं यही समझता था कि मैं कितना बड़ा पुण्यात्मा हूँ। पर अब मुझे पता चल गया कि मैं तुम्हारे समान पुण्यात्मा नही हूँ। – क्यों? बोले – मैंने सुना है कि जब तुमसे पूछा गया कि श्रीराम को वन क्यों जाना पड़ा। तो तुमने कहा – प्रभु में तो कोई पाप हैं नहीं, पर वे मेरे पाप का फल भोगने के लिए वन चले गये।

मोहिं समान को पाप निवासी ।
जेहि लगि सीय राम बनबासी ।।

प्रभु बोले – जब से मैंने सुना कि मेरे वन आने का परिणाम मेरा पुण्य नहीं, बल्कि तुम्हारा पाप है, तो मैं समझ गया कि जिसका पाप इतना महान् है, उसका पुण्य कितना महान् होगा। जिसको मैं इतनी ऊँची वस्तु मानता था, अगर वह तुम्हारा पाप है, तो धन्य है ऐसा पाप !

हनुमानजी से भी प्रभु ने पूछा – तुम्हें देखकर भरत को भ्रम हो गया, निशाचर समझ लिया, बाण चला दिया !

हनुमानजी ने चरण पकड़ लिये – प्रभो, भरतजी को भ्रम नहीं हुआ, बल्कि मेरे भ्रम को उन्होंने मिटा दिया। क्योंकि सारा कार्य आप मेरे द्वारा ले रहे थे – वैद्य लाऊँ तो मैं, लक्ष्मण को उठाकर लाऊँ तो मैं, दवा के पर्वत को लाऊँ तो मैं ! मुझे भ्रम हो सकता था कि मैं न होता, तो क्या होता ! पर भरत का बाण लगा, मैं नीचे गिरा और पर्वत ऊपर रह गया। मेरा भ्रम नष्ट हुआ। उनके बाण ने दिखा दिया कि यदि तुमने उठाया होता, तो वह तुम्हारे साथ गिरता।

प्रभु बोले – हनुमान, तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। उसका पाप, उसका भ्रम इतना महान् है कि शब्द ही अपना अर्थ बदल देता है।

जब प्रभु ने कहा – भरत, मैंने सत्य कहा या नहीं? तुममें दोष का लेश भी नहीं है।

तो उन्होंने कहा – आपने सत्य कहा है, परन्तु सत्य यह है कि जो जैसा देखता है वैसा कहे। जब आपकी आँखों में दोष देखने की शक्ति ही नहीं है और यदि आपको भरत में दोष दिखाई नहीं देता, तो यह भरत की विशेषता नहीं, यह आपके नेत्रों की विशेषता है।

परन्तु वे भला कैसे मानने वाले थे ! बोले – ठीक है, दोष देखने की शक्ति नहीं है, तो गुण देखने की शक्ति तो है। – महाराज, है। बोले – तो तुममें जो गुण देख रहा हूँ, वह ठीक है या नहीं? तुम मानते हो कि गुण तुममें हैं?

भरतजी ने उलटे प्रभु से पूछा – अगर बन्दर बहुत बढ़िया नाचने लगे और तोता श्लोक पढ़ने लगे, तो तोते और बन्दर की विशेषता है या उन्हें पढ़ाने और सिखाने बाले की?

प्रभु ने कहा – पढ़ाने और सिखाने वाले की है।

बोले – महाराज, भरत तो तोते और बन्दर के जैसा है –

पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना ।
गुन गति नट पाठक आधीना ।। २/२९९/८
यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर ।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर ।। २/२९९

गुण आपके ही हैं। कौन व्यक्ति कहता है कि गुण मेरे हैं और दोषरहित व्यक्ति न होने पर भी धन्य है आपका शील, कि किसी में दोष नहीं देख पाते !

तो ऐसा है भरतजी का हंसत्व और इस प्रकार उन्होंने अवगुणों का परित्याग करके गुणों को ग्रहण किया। भरतजी के सन्दर्भ में हम यही कह सकते हैं कि सचमुच श्रीभरत तो निरन्तर गुण के मोती चुनते ही रहते हैं। चौदह वर्ष तक उन्होंने यही तो किया। हनुमान जी जब सन्देश लेकर के आये, तो उन्होंने सूचना देते हुए कहा – आप निरन्तर जिनका गुणानुवाद कर रहे हैं, मानो हंस के समान गुणों के मोती चुनते रहते हैं –

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती ।
रटहु निरन्तर गुन गन पाँती ।।

जब हम समझ लेंगे कि गुण व्यक्ति के नहीं, वे एकमात्र ईश्वर के ही हैं और व्यक्ति को कही अपना गुण न दिखाई दे, उसे निरन्तर प्रभु के गुणों का स्मरण होता रहे, तो उसके जीवन में विचार, वैराग्य और त्याग-ज्ञान की वृत्ति स्वयं ही आ जाती है। भरतजी के जीवन में ऐसा ही देखने को मिलता है। हम चातक बन जायँ, हम हंस बन जायँ, हमारे कान समुद्र बन जायँ। इनमें से एक साधना को भी हम सही अर्थों में अपने जीवन में स्वीकार कर लें, तो प्रभु को हृदय में बसा सकते हैं, उन्हें पा सकते हैं।

❖ (समाप्त) ❖

भागवत की कथाएँ (२)

स्वामी अमलानन्द

(श्रीमद् भागवतम् पुराणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसकी कथाओं ने युग-युग से मनुष्य को धर्म के प्रति आस्था-विश्वास दिया है जिससे भारतवासियों ने दृढ़ आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। उन्हीं कथाओं में से लेखक ने कुछ का चयन करके सरल भाषा तथा संक्षेप में पुनर्लेखन किया है। 'विवेक-ज्योति' के लिये इस ग्रन्थ का सुललित अनुवाद किया है छपरा के डॉ. केदारनाथ लाभ, डी. लिट्. ने। – सं.)

तृतीय स्कन्ध

विदुर-उद्धव-मैत्रेय संवाद

जिज्ञासु राजा परीक्षित के आग्रह को देखकर शुकदेव बड़े आनन्दित हुए। सात दिनों के भीतर ही उनकी मृत्यु होने वाली थी, तथापि उनके मन में कोई भय नहीं है। शुकदेव सर्वप्रथम अपने बड़े-बूढ़ों से सुनी कुरु-पाण्डवों के अतीत के दिनों की कथा सुनाने लगे।

धृतराष्ट्र ने अपने दुष्ट पुत्रों को सन्तुष्ट करने हेतु अनेक अन्यायपूर्ण नीतियाँ अपनायी थीं। अपने ही भतीजों – पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाकर मार डालने हेतु सहमति दे दी थी। खुली राजसभा में कुलवधू द्रौपदी का अपमान किया गया – उसे भी धृतराष्ट्र ने नहीं रोका। दुर्योधन ने जुए के खेल में छल द्वारा पाण्डवों को हराकर उन्हें वनवास भेजने की व्यवस्था की – महाभारत में इन सारी बातों का वर्णन है।

धृतराष्ट्र के एक अन्य भाई विदुर परम ज्ञानी तथा नीति-परायण थे। उन्होंने अन्धे राजा को पाप के मार्ग से लौटाना चाहा था, इसीलिये उन्हें दुर्योधन का त्याग करने की सलाह दी। इससे शकुनी आदि सभी नाराज हो गए। दुर्योधन ने विदुर को खूब अपमानित करके राजसभा से भगा दिया।

विदुर को अब पाप की नगरी हस्तिनापुर में रहना अच्छा नहीं लगा। वे राजपुरी छोड़कर दीन-हीन वेश में भारत के विभिन्न तीर्थों में भ्रमण करने लगे। बहुत दिनों के बाद उनकी कृष्ण-भक्त उद्धव से भेंट हुई। श्रीकृष्ण का समाचार पूछने पर उद्धव रोने लगे। उन्होंने बताया कि परम पुरुष श्रीकृष्ण अपनी इहलीला समाप्त कर स्वधाम चले गए हैं। श्रीकृष्ण बचपन से ही उद्धव के सखा थे। उन्होंने विदुर को श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक बातें बतायीं। उद्धव ने वासुदेव कृष्ण की जन्म-कथा, कंस-वध, वृन्दावन-लीला आदि कथाएँ विदुर से कहीं। बाद में हम इन कथाओं को विस्तारपूर्वक लिखने का प्रयास करेंगे। उद्धव ने विदुर को सलाह दी – मैत्रेय मुनि से आप श्रीकृष्ण के विषय में और भी अनेक बातें सुन सकेंगे। विदुर मैत्रेय मुनि के पास गए। विदुर को देख मैत्रेय मुनि बड़े आनन्दित हुए, क्योंकि विदुर भी एक भगवत्-भक्त और साधक थे तथा वे सदा नीति के मार्ग पर चलते थे। विदुर की पूछने पर मैत्रेय मुनि ने उनके समक्ष भगवान की अवतार-लीला, सृष्टि-प्रकरण आदि का वर्णन किया।

जय-विजय

(अहंकार करना ठीक नहीं। उससे पतन होता है। परन्तु यदि पश्चाताप हो, तो पहले का गौरव फिर वापस मिल जाता है।)

ब्रह्माजी के चार पुत्र थे – सनक, सनन्द, सनातन तथा सनत्कुमार। उन लोगों ने विवाह आदि नहीं किया था और न ही धन कमाने का प्रयास करते थे। वे केवल साधन-भजन करते हुए पवित्र जीवन बिताने लगे। एक दिन ये चारों बड़ी दीन दशा में परम पुरुष विष्णु का दर्शन करने वैकुण्ठ धाम गए। एक-एक फाटक पार करते हुए वे लोग सातवें फाटक पर जा पहुँचे। इस फाटक पर दो द्वारपाल पहरा दे रहे थे। उन्होंने मुनियों का दीन वेश देखकर उन्हें विष्णु के पास नहीं जाने दिया। लाठी उठाकर रास्ता रोक दिया। मुनियों ने बड़ा अनुनय-विनय किया, पर इसका कोई लाभ नहीं हुआ। तब मुनियों ने द्वारपालों को शाप दिया – "तुम लोग पापयोनि में जन्म ग्रहण करोगे और राक्षस बनेगे।" इससे जय-विजय को बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्होंने मुनियों से क्षमा माँगी।

श्रीविष्णु को ज्ञात होने पर वे लक्ष्मीजी को साथ लिये वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने इस दण्ड को उचित कहा। पर जय-विजय उनके बड़े प्रिय द्वारपाल थे। अत: श्रीविष्णु ने दोनों से कहा – "डरने की कोई बात नहीं है। तीन जन्मों के बाद तुम लोग मेरे पास लौट आओगे। जय-विजय ने अपने पहले जन्म में दिति के गर्भ से दैत्य हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के रूप में जन्म लिया। बड़ा भाई हिरण्यकशिपु अति उग्र स्वभाव का था। अपने तप के द्वारा उसने ब्रह्मा का वरदान पाया कि वह किसी मनुष्य या पशु के द्वारा मारा नहीं जा सकेगा। धरती अथवा आकाश में उसे कोई मार नहीं सकेगा।

छोटे भाई हिरण्याक्ष ने गदा लेकर स्वर्ग से सभी देवताओं को भगा दिया। उस समय पृथ्वी महा प्लावन से जलमग्न थी और इस जल के भीतर ही दैत्य हिरण्याक्ष ने पृथ्वी पर आक्रमण किया। तब वराहदेव ने उस अनन्त जलराशि के भीतर जाकर हिरण्याक्ष का वध किया और पृथ्वी का उद्धार किया। जय-विजय दूसरे जन्म में रावण तथा कुम्भकर्ण हुए और तीसरे जन्म में शिशुपाल तथा दन्तवक्र हुए। इसके उपरान्त वे दोनों फिर श्रीविष्णु के पास लौट गए।

कपिल मुनि

(हमारे बन्धन तथा मुक्ति का कारण हमारे भीतर ही है। मन ही हमारी आत्मा के बन्धन और मुक्ति दोनों का कारण है। मन पवित्र होने से मुक्ति होती है। कपिल मुनि ने अपनी माँ को यही बताया।)

स्वायम्भुव मनु ने अपनी पुत्री देवहूति का विवाह कर्दम मुनि के साथ किया था। सांख्य दर्शन के प्रथम उपदेशक कपिल मुनि इन दोनों की सन्तान थे। वे भगवान विष्णु के ही एक अन्य अवतार थे। पिता यह रहस्य जानते थे, अत: उन्हें माता के संरक्षण में रखकर वे स्वयं तपस्या करने चले गए। तपस्या के लिये जाते समय मुनि ने अपनी पत्नी देवहूति से कह दिया था कि तुम्हारा पुत्र ही तुम्हें भगवान को पाने का मार्ग दिखा देगा और तुम्हारे सारे सन्देहों को दूर करेगा।

मुनि तपस्या करने चले गए। माता के साथ कपिल मुनि बिन्दु सरोवर के तट पर रह गए। एक दिन माँ ने पुत्र से कहा – ''मैं इन्द्रियों की लालसाओं से मोहान्ध हो गयी हूँ। तुम मेरा अहंकार तथा मोह दूर कर दो।'' उत्तर में कपिल ने कहा – ''माँ, आत्मा के बन्धन और मुक्ति का एकमात्र कारण चित्त ही है। सत्व, रजस् तथा तमोगुण के कारण चित्त आसक्त होता है। इसी कारण हम लोग बन्धनग्रस्त होते हैं। इसी चित्त को यदि परम पुरुष भगवान में लगा दिया जाय, तो तत्काल मुक्ति[१] मिल जाती है। भगवान की लीला के सतत स्मरण को भक्ति कहते हैं। इस भक्ति के द्वारा जीव इसी देह में भगवान को पा सकता है। कोई-कोई भगवान को अपने सारे कर्म अर्पित करते हैं। इसके फलस्वरूप वे भगवान की शान्त और प्रफुल्ल मूर्ति का दर्शन करते हैं तथा अपनी इच्छा के अनुरूप उनसे वार्तालाप कर सकते हैं।

भक्तियोग की व्याख्या करने के बाद कपिलदेव ने अपनी माता को सांख्य-दर्शन तथा तत्वज्ञान का उपदेश देना शुरू किया। क्रमश: उन्होंने पुरुष, प्रकृति एवं चौबीस[२] तत्त्वों का वर्णन किया। उन्होंने अपनी माँ को अष्टांग[३] योग के बारे में भी बताया। कपिल मुनि ने अधार्मिक लोगों के अधोगति तथा धार्मिक लोगों की ऊर्ध्वगति आदि गम्भीर तत्त्वों की व्याख्या की। इससे उनकी माता परम सन्तुष्ट हुईं।

उनकी माता देवहूति के मोह का अन्धकार मिट गया। उन्होंने भगवान की स्तुति करते हुए कहा – ''जो नियमित रूप से तुम्हारा स्मरण करता है, वह यदि चाण्डाल हो, तो भी श्रेष्ठ द्विज है; जो तुम्हारे नाम का जप करता है, उसी की तपस्या सार्थक है।'' माता को उपदेश देने के बाद कपिल मुनि समुद्र की ओर चले गए। समुद्र ने उन्हें पूजा के रूप में अर्घ्य दिया और निवास-स्थान प्रदान दिया। वे आज भी तीनों लोकों के कल्याण हेतु योग में ध्यानमग्न हैं और सागर-संगम पर विराज रहे हैं।

चतुर्थ स्कन्ध

दक्ष-यज्ञ एवं सती का देहत्याग

शुकदेव भागवत की कथा कहे जा रहे हैं। परीक्षित तथा समवेत मुनियों का आग्रह देखकर उन्होंने भगवान कृष्ण तथा विभिन्न अवतारों तथा सृष्टि की कथा कही। इसके बाद वे दक्ष-यज्ञ तथा सती के देहत्याग की कहानी सुना रहे हैं।

प्रजापति दक्ष की अनेक पुत्रियाँ थीं। उनमें से 'सती' का विवाह उन्होंने महादेव के साथ किया था। इस सम्बन्ध से देवादिदेव शिव दक्ष के दामाद हुए। दक्ष एक बार देवताओं के एक यज्ञ में उपस्थित हुए। उन्हें देखकर सभी देवताओं ने अपने-अपने आसन से उठकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया, परन्तु महादेव ने जमाई होकर भी दक्ष के प्रति कोई विशेष सम्मान नहीं दिखाया। इससे दक्ष के मन में क्रोध का संचार हुआ। उन्होंने नाराज होकर कहा – ''आज से शिव किसी भी यज्ञ में भाग नहीं ले सकेंगे।'' आत्मविभोर महादेव शान्त भाव से बैठे रहे। मगर शिव के सेवक नन्दी ने इस पर क्रोधित होकर शाप दिया – दक्ष का सिर बकरे का होगा।

कुछ दिनों बाद दक्षराज ने स्वयं एक यज्ञ का आयोजन किया। उन्होंने अनेक देवता, ऋषि-मुनि आदि को आमंत्रित किया। परन्तु अपनी पुत्री तथा दामाद को उन्होंने आमंत्रण नहीं भेजा। सती को अपने मायके में होनेवाले विराट् उत्सव के बारे में सूचना मिली। उन्होंने इस उत्सव में भाग लेने की जिद ठान ली। पुत्री को अपने पिता के घर जाने के लिये निमंत्रण की क्या जरूरत! महादेव ने पहले तो मना किया, परन्तु सती का हठ देखकर अनुमति दे दी तथा नन्दी-भृंगी को साथ भेज दिया।

सती पिता के घर जा पहुँचीं, परन्तु पिता ने उनके प्रति कोई स्नेह नहीं जताया। इस पर सती ने कुछ बुरा नहीं माना। परन्तु जब उन्होंने पिता से पूछा कि शिव को छोड़कर यह यज्ञ क्यों किया जा रहा है? तो इसके उत्तर में दक्ष शिव की घोर निन्दा करने लगे। सती ने उन्हें बताया – इस लोक में जिनसे बड़ा कोई नहीं है, जो सभी भूतों की अन्तरात्मा हैं,

(शेष अगले पृष्ठ पर)

---

१. चेत: खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ ३/२५/१५

२. **पंच महाभूत** – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। **पंच तन्मात्रा** – गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द। **पंच ज्ञानेन्द्रिय** – आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा। **पंच कर्मेन्द्रिय** – वाक्, हस्त, पाद (पैर), पायु (गुदा) और उपस्थ (जननेन्द्रिय)। इनके साथ **मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त** को मिलाकर **कुल २४ तत्त्व** हुए।

३. **अष्टांग योग** – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। एक के बाद एक इन आठ साधनों को जोड़कर अष्टांग योग या राजयोग होता है।

आत्माराम की आत्मकथा (४३)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें संन्यास-दीक्षा प्रदान की थी। भक्तों के आन्तरिक अनुरोध पर उन्होंने बँगला भाषा में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ प्रेरक तथा रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। इसकी पाण्डुलिपि हमें श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। अनेक बहुमूल्य जानकारियों से युक्त होने के कारण हम इसका क्रमश: प्रकाशन कर रहे हैं। इसके पूर्व भी हम उनकी दो छोटी पुस्तकों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें' तथा 'मानवता की झाँकी' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं – सं.)

माउण्ट आबू में पहली बार

हैदराबाद (सिन्ध) के सेठ कटुमल के बगीचे में महीने भर रहा था। उनकी ओर से आबूरोड तक का टिकट हो गया। मेरे पास केवल आठ आने पैसे थे, जिससे रास्ते का खर्च निकला। आबू पहुँचकर हाथ में कुछ नहीं रहा। आबू-रोड रेलवे स्टेशन से पहाड़ १७-१८ मील दूर था। मेरे लिये पैदल जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं था। पाँच मील चलने के बाद ठीक पहाड़ के नीचे एक रामायत बाबाजी के मन्दिर में रात्रिवास किया। अगले दिन भोर में फिर रवाना होकर शाम को ऊपर पहुँचा। रास्ते के एक गाँव में माधुकरी करके कुछ भोजन मिला था। **आबू एक मनोरम पहाड़ और हिन्दुओं का एक प्राचीन तीर्थ है।** वहाँ अर्बुदा देवी तथा अचलेश्वर शिव हैं। बाद में जैन लोगों ने वहाँ जाकर सफेद संगमरमर के दो अत्यन्त अद्भुत नक्काशीदार मन्दिर बनवाये हैं। दो भाइयों ने दो मन्दिर बनवाये। कहते हैं कि उनके निर्माण में ग्यारह और अठारह करोड़ रुपये खर्च हुए थे। दूर से तो वे भद्दे – मृतकों की कब्र सरीखे दीख पड़ते हैं। परन्तु भीतर जाने पर ही उन्हें ठीक से देखा-समझा जा सकता है। कहते हैं कि दुनिया में ऐसी नक्काशी अन्यत्र कहीं नहीं है। जैसी चीनी तथा जापानी कागज की जालियाँ या रंगीन कागज की शोभामय झाड़-फानूस दीखती है, वैसी ही यह संगमरमर की बनी है। मोम के समान एक पत्थर पर खुदाई की हुई है और बड़ा महीन कार्य है। विशाल नाट्य मन्दिर में तथा अन्यत्र भी वैसा ही कार्य है। उसमें कितनी सुन्दर तथा सूक्ष्म खुदाई का कार्य है, इसे देखे बिना ठीक समझा नहीं जा सकता। कहते हैं कि ताजमहल का सौन्दर्य बाहर है और आबू के दीलवाड़ा मन्दिरों का सौन्दर्य भीतर है।

छोटा-सा नक्की तालाब। उसके एक ओर छोटा-सा बाजार, बस्ती और दूर-दूर तक राजा-महाराजाओं के महल। नक्की तालाब के एक ओर छोटी-छोटी गुफाएँ हैं – पत्थर की चट्टानों के नीचे साधुओं के किसी प्रकार निवास करने के स्थान। आबू सदा से ही साधुओं का प्रिय रहा है। जंगल में आम, जामुन, करमचा आदि प्रचुर मात्रा में है। खट्टा कुछ भी नहीं है। सब अति मधुर और पर्याप्त मात्रा में हैं। चारों ओर झरने हैं। पन्द्रह वर्षों के दौरान जंगल की खूब कटाई और वर्षा कम होने से सब झरनों के सूख गये हैं, अत: पीने के

पिछले पृष्ठ का शेषांश

जिनके लिए कुछ भी प्रिय या अप्रिय नहीं है, जो समस्त वैर-विरोध के परे हैं, उनसे आप शत्रुता क्यों करते हैं? इस पर भी दक्षराज ने शिव की निन्दा बन्द नहीं की। सती अपने पति की यह निन्दा सहन नहीं कर सकीं। उन्होंने यज्ञ-भूमि में ही देहत्याग कर दिया।

महादेव ने नारद से सती के देहत्याग की घटना सुनी। सुनकर वे क्रोध से धधक उठे और सिर की जटा के बाल उखाड़ने लगे। उससे एक भयंकर वीर का जन्म हुआ, जिसका नाम पड़ा वीरभद्र। वीरभद्र ने यज्ञस्थल पर पहुँच कर शिव के अनुचरों की सहायता से दक्ष का सिर काट डाला। देवतागण भयभीत होकर ब्रह्मा के पास दौड़ पड़े। ब्रह्मा सबको साथ लेकर आशुतोष शिव के पास गये और स्तुति-प्रार्थना के द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। शिव बोले – दक्ष तो बच जायेंगे, परन्तु उनका सिर बकरे का होगा।

दक्ष राजा जीवित हो गए। यज्ञ फिर आरम्भ हुआ। गरुड़-वाहन विष्णु सहसा वहाँ आविर्भूत हुए। यज्ञ सुसम्पन्न हुआ। महादेव को यज्ञ-भाग मिला। दक्ष-कन्या सती ने बाद में हिमालय की पत्नी मेनका के गर्भ से जन्म लिया था – और उमा या दुर्गा के रूप में फिर शिव की पत्नी हुई थीं। यज्ञ के अन्त में भगवान विष्णु ने सभी देवताओं से कहा – हम तीनों एक ही सत्ता हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर – अलग-अलग सत्ता नहीं हैं, बल्कि मेरे ही एक-एक अंग हैं। सिर और हाथ को क्या कोई स्वयं से अलग समझता है? इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर – तीनों का एक ही स्वरूप है। हम लोग सभी जीवों की आत्मा हैं। जो व्यक्ति हम तीनों को अभिन्न रूप में देखते हैं, वे ही शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।[४]

❖ (क्रमशः) ❖

४. त्रयाणामेक भावानाम् यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥ ४/७/५४

पानी की समस्या हो रही है। एक नया बाँध बनाकर पानी इकट्ठा करना पड़ रहा है। आबू को देखकर ही समझा जा सकता है कि जंगलों की अबाध कटाई से कितनी हानि हो सकती है। पहले यहाँ १५० से १६० इंच तक वर्षा होती थी, अब यह केवल ४५-५० इंच पर आ गयी है।

१९२८ ई० में पहली बार आबू गया था। वहाँ ऊपर की चट्टानों पर स्थित समतल भूमि पर चढ़ा। देखा – एक सौम्य पुरुष आ रहे हैं। उन्होंने सहसा ठिठककर मुझसे पूछा – "कहाँ से आ रहे हैं?" आदि आदि। पूछने की भंगिमा से लगा कि पुलिस के आदमी हैं। मैंने भी पूछा – "रहने की सुविधा कहाँ हो सकती है?" और उन्हीं के निर्देशानुसार जंगल के भीतर 'रामकुण्ड' नामक संन्यासियों के स्थान पर गया। महन्त बाबाजी ने कहा – "जगह तो नहीं है, सब गुफाएँ भी भर गई हैं, लेकिन एकदम जंगल में उस आश्रम के निकट एक खुली गुफा है। यदि रह सको, तो रहो।"

और कोई चारा न देखकर मैंने उस छोटी-सी 'सिद्ध-गुफा' में ही आश्रय लिया। दरवाजा तो उसमें था ही नहीं, इसके सिवा वह इतनी छोटी थी कि मेरे जैसा ठिगना व्यक्ति भी उसमें बड़ी कठिनाई से सीधा लेट सकता था। अगले दिन सोचा कि महन्तजी भिक्षा देंगे। लेकिन कोई बुलावा न आने पर कमण्डलु से पानी पी-पीकर ही दिन बिताया। वहीं एक पहाड़ी ब्रह्मचारी भी रहते थे। वे रात के समय थोड़ी-सी चाय ले आये और बोले – "महन्त बड़े कंजूस हैं, साधुओं को कुछ नहीं देते, जोर लगाने पर कभी-कभार भिक्षा दे देते हैं। ऐसे में तो आप मारे जायेंगे, गाँव में ही चेष्टा कीजिये।"

रात को ज्वर आया, अत: अगले दिन भी भिक्षा की चेष्टा नहीं हो सकी। उन ब्रह्मचारी ने ही मिट्टी के एक कुल्हड़ में थोड़ी चाय दी और थोड़ी लकड़ियाँ जुटाकर धूनी जला दी। सारे दिन वह चाय पीकर ही रहा। शाम को वे ही सज्जन खोज करते हुए आ पहुँचे। महन्तजी ने ब्रह्मचारी को साथ भेजा था। ज्वर हुआ है, वहीं सुन लिया था, अत: आते ही देखा कि किस-किस चीज की जरूरत है। कुनैन, चाय, गुड़ और ओढ़ने के लिये रजाई आदि भेज दी और जितना भी दूध लगे, महन्त के द्वारा उसकी व्यवस्था करवा दी।

परिचय होने पर ज्ञात हुआ कि वे सी. आई. डी. इंस्पेक्टर थे। गुजराती, नागर ब्राह्मण थे। महन्त के व्यवहार के बारे में ब्रह्मचारी से जानकर उन्हें दो-चार बातें भी सुना दीं, तब महन्तजी ने कहा – "माँगने से क्या मैं नहीं देता! उन्होंने माँगा ही नहीं, इसलिए मैं समझ नहीं सका।" अस्तु। उनका परिचय बाद में बड़ा काम आया था। उन्होंने तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारी आर्यसमाजी विद्यानन्द (गृहस्थ) ने पाँच घरों में भिक्षा की व्यवस्था कर दी। फिर कोई कष्ट नहीं हुआ। वर्षा के समय गुफा के भीतर पानी आता था, इसलिए मुझे बैठकर ही समय बिताना पड़ता है – यह पता चलने पर उन्होंने एक पारसी निर्माणाधीन नये मकान के सुपरवाइजर से बातें करके, उन पारसी सज्जन की अनुमति लेकर, उस मकान में एक कमरा दिलवा दिया। उन दिनों शाम को उनके साथ टहलने जाता, धर्मचर्चा भी होती। पुलिस में ऐसे लोग नहीं दीखते। गुफा में लकड़बग्घे का उत्पात होता। कई दिन आकर पैर सूंघते; मैं समझ जाता। भालू भी आते, पर किसी दिन कोई अनिष्ट नहीं किया। काले मुँह वाले बन्दर आकर सारी चीजें उलट-पुलट कर देखते। जंगल से इकट्ठे किये हुए आम लेकर चले जाते। ... बड़े आनन्द में था।

इसी बार अलवर के महाराजा जयसिंह के साथ परिचय हुआ था – तब वे रामकुण्ड आये थे। आबू में ही जामनगर आतंक-निग्रह कम्पनी के मैनेजिंग प्रोप्राइटर शंकरलाल मणिशंकर के साथ भी परिचय हुआ था। इन्हीं के निमंत्रण पर मैं काठियावाड़, राजकोट तथा जामनगर गया था। पूज्य गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्दजी) कुछ दिन इनके पिता मणिशंकर गोविन्दजी के यहाँ भी थे। ये झण्डू भट्ट के प्रतिस्पर्धी थे।

राजकोट आश्रम का श्रीगणेश

महाराजा मोरवी के पुराने महल में नया आश्रम स्थापित हुआ है। न जाने कैसा वैभव होगा! हे भगवान! राजकोट जाकर देखा – एक जीर्ण-शीर्ण भवन है और उसी की दूसरी मंजिल पर आश्रम बना है। यह मोरबी के जूना उतारो अर्थात् पहले का निवास-स्थान था। महन्त स्वामी विविदिषानन्द बीमार होकर मायावती गये हुए थे। फनी महाराज और वीरेश चैतन्य उपस्थित थे। अवस्था शोचनीय थी – अर्थाभाव के कारण उबले हुए कच्चे टमाटर और थोड़ा दाल-भात – यही खाकर किसी तरह चल रहा था। मैंने पत्र लिखकर पूछा था – "राजकोट में माधुकरी आदि की सुविधा है या नहीं?" उत्तर मिला था – "यहाँ कोई सुविधा नहीं है।" शंकर भाई का अतिथि होते हुए भी मैं आश्रम में ठहरा और आश्वस्त करते हुए बोला – "भिक्षा का प्रबन्ध करके ही आया हूँ।" ... इसके बाद शंकर भाई के पूछने पर उन लोगों ने अपने भोजन की दुरवस्था की बात कही और उन्होंने तत्काल अच्छा चावल, दाल, घी आदि भेज दिया।

राजकोट में १५-२० दिन रहकर जामनगर गया। वहाँ श्री जुनारकर के साथ परिचय हुआ, ये पहले से ही आश्रम के सम्पर्क में आ चुके थे। वहाँ की हालत के बारे में सुनकर और मेरे अनुरोध पर एक साल के लिये गेहूँ और कुछ रुपये एकत्र करके भेज दिया था। पेट में अन्न रहने पर ही काम की अन्य बातें आती हैं। यदि सारी शक्ति भोजन जुटाने में ही खर्च हो जाय, तो अन्य काम कैसे करेंगे? ...

जामनगर में दिन आनन्द में बीत रहे थे। एक मजेदार बात भी हुई थी – हाथीभाई शास्त्री से मिलने की घटना। श्री जुनारकर ने दो बार पत्र भेजकर सूचित किया था कि राज-पण्डित, प्रखर विद्वान्, श्रीमान् हाथीभाई शास्त्री आपसे मिलने आयेंगे, आसन पर उपस्थित रहना। दोनों दिन बैठे-बैठे प्रतीक्षा करने के बाद निराश होकर टहलने गया था। फिर एक दिन राम-नाम-संकीर्तन का आयोजन हुआ था। पोलिटिकल दीवान जुनारकर, रेवेन्यू दीवान गोकुलभाई पटेल आदि – सभी उपस्थित थे। सब समाप्त होने के बाद देखा – एक मुझसे भी ठिगने, दुबले-पतले व्यक्ति चार-पाँच लोगों के आगे-आगे चले आ रहे हैं। जुनारकर ने कहा – "हाथीभाई शास्त्री आ रहे हैं।" फिर आपस में परिचय करा दिये जाने के बाद मैंने कहा – "दो दिन से इन्होंने आपके आगमन के बारे में सूचना भेज रखी थी, परन्तु प्रतीक्षा करते-करते आखिरकार निराश होकर मैंने यही सोचा था कि विशाल शरीर के साथ चलकर आना कष्टकर होने के कारण शायद नहीं आ सके। परन्तु देखता हूँ कि आप तो मुझसे भी दुबले-पतले हैं! वैसे हाथी नाम धारण करने का महत्त्व अवश्य है।" सभी लोग हँसने लगे। और उन्होंने भी 'हो, हो' करते हुए उसमें योग दिया। ये काठियावाड़ के अद्वितीय नैयायिक पण्डित थे।

जामनगर से फिर राजकोट लौटा। माधुकरी करके ही रहता था। एक दिन दोपहर को भिक्षा ग्रहण करके आश्रम लौटा, तो देखा – एक परिचित महाराष्ट्रीय युवक कुछ कीमती पुस्तकें लिये थियॉसाफिकल सोसायटी की ओर चला जा रहा था। मैंने पूछा – "पुस्तकें लेकर कहाँ जा रहे हैं?" उन्होंने बताया कि उसी सोसायटी को देने जा रहे हैं। बोले – "पिताजी की मृत्यु हो गई है। सोचा है कि उनकी पुस्तकें दे देंगे, क्योंकि हम अपढ़ हैं, कुछ समझेंगे नहीं, पड़ी-पड़ी खराब हो जायेंगी।" मैं बोला – "हमें दे दो न, आश्रम में पुस्तकालय बनेगा।" – "ठीक है, तो फिर चलिए, जो लेना है स्वयं देखकर ले लीजिये।" वे यह कहकर चले गये कि लौटते समय वे मुझे आश्रम से बुलाकर लेते जायेंगे।

फनी महाराज तब आश्रम के कार्यकारी अध्यक्ष थे। मैंने कहा – "कुछ पुस्तकें मिल रही हैं, पुस्तकालय के लिए ले आऊँ? रखने की व्यवस्था करनी पड़ेगी।" उन्होंने बताया कि वे इस शर्त पर वहाँ हैं कि केवल ध्यान-जप लेकर ही रहेंगे, अत: वह सब जिम्मेवारी उठाना उनके लिये सम्भव नहीं होगा।" परन्तु मेरे लिये भी इतनी अच्छी-अच्छी पुस्तकों का लोभ छोड़ना बड़ा कठिन था। वीरेश चैतन्य ने मेरा साथ दिया। उनको साथ ले जाकर उस दिन तथा दूसरे दिन अपराह्न के तीन बजे तक, चुन-चुनकर शास्त्रीय, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक विषयों के हिन्दी, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में करीब तीन हजार ग्रन्थ ले आया। एक कमरे में कागज बिछाकर उन्हें फर्श पर ही सजाकर रखा गया। तालिका बनाकर दाता को एक प्रति दे दी गयी। दाता की इच्छा थी कि ये रामकृष्ण संघ के संन्यासियों की सम्पत्ति हों। इसी शर्त पर उन्होंने पुस्तकें दान की थीं। यदि किसी कारण यह आश्रम बन्द हो जाय, तो संन्यासियों के उपयोग के लिए उन्हें किसी अन्य आश्रम में ले जाया जा सकता है। फनी महाराज से यह बात कहीं लिखकर रख लेने को कहा। दाता को तो मैंने उसी समय लिखकर दे दिया था। ... पुस्तकों को देख वे सन्तुष्ट नहीं हुए – काम बढ़ेगा! तब उनके मन की वैसी ही अवस्था थी। खूब परिश्रम करके वीरेश चैतन्य की सहायता से मैंने उनकी तालिका बनायी और रजिस्टर में चढ़ाकर नम्बर दिया। सब देखते हुए भी उन्होंने कोई सहायता नहीं की। लेकिन जब मित्रों की सहायता से दो आलमारियाँ मिलीं और सभी प्रशंसा करने लगे, तब उनके मन में भी रुचि जागने लगी। धीरे-धीरे कुछ और आलमारियाँ भी मिली। कुछ मेरे द्वारा और प्रोफेसर जयन्तीलाल के माध्यम से एक आलमारी वीरेश चैतन्य भी लेकर आये। सब पुस्तकें आलमारियों में रहने से पुस्तकालय की शोभा बढ़ गयी। पहले केवल एक आलमारी में मात्र श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी की किताबें तथा दो-चार उपनिषदें रखी थीं।

राजकोट आश्रम के महन्त स्वामी विविदिषानन्द ने वचन दिया था कि वे अहमदाबाद जाकर वहाँ के उत्सव में व्याख्यान देंगे, परन्तु उस समय वे स्वास्थ्य-सुधार के लिये मायावती गये हुए थे और सम्भवत: अपने अमेरिका जाने की व्यवस्था भी कर रहे थे। फनी महाराज मुझसे जाने के लिए अनुरोध करने लगे। मैं गया। उत्सव प्रेमाबाई हॉल में हुआ। जीवन में पहली बार हिन्दी में भाषण दिया। काफी लोग आये थे। गुजराती लोगों ने प्रशंसा ही की। अगले दिन सुबह अखबारों में देखा – राजकोट के महन्त स्वामी विविदिषानन्द जी ने अद्भुत मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया। मैं तो खूब हँसा। फिर संवाददाता स्वयं आये और अपनी भूल को सुधारने की

इच्छा व्यक्त की। मैंने ही मना किया। मैं ही राजकोट की छपी पुरानी रिपोर्ट ले गया था, जिसमें पहले से ही छपा था कि विविदिषानन्द जी आयेंगे, इसी कारण उनसे भूल हुई थी। बाद में मैंने फनी महाराज को मायावती लिखने को कहा – बाबाजी योगबल से आकर अहमदाबाद में व्याख्यान दे गये हैं। झूठ बोलने का कोई प्रश्न ही नहीं, अखबार ही इसका साक्षी है। तभी मैं पहली बार अहमदाबाद गया था।

बिलखा में श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम

इसी बीच बिलखा राज्य के दीवान त्रिभुवन भाई के साथ परिचय हुआ। उन्होंने बहुत अनुरोध किया कि मैं उनके साथ बिलखा जाकर राज्य के खर्च पर एक दातव्य आयुर्वेदिक औषधालय स्थापित करूँ। सारा खर्च रियासत देगी – साल में एक हजार रुपये या उससे अधिक होने पर भी देगी। एक स्थानीय वैद्य रहेगा और वह मेरे निर्देशानुसार काम करेगा। मुझे केवल निर्देश ही देना होगा, दूसरा कोई दायित्व नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त मुझे राज्य में हरिजनों के लिए एक स्कूल की स्थापना में भी सहायता करनी होगी। इसके लिये भवन तथा कर्मचारी रियासत की ओर से मिलेगा। इस शर्त पर जाने को राजी हुआ कि यह प्रयोग के तौर पर होगा। पूरा उत्तरदायित्व रियासत का होगा और यदि रियासत नियमित रूप से खर्च न दे, तो बन्द कर दिया जायेगा।

पूजनीय सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) को मैंने इसकी सूचना भेज दी, क्योंकि लोगों को ऐसी धारणा हो सकती थी कि वह मिशन की ही एक शाखा है। वैसे त्रिभुवन भाई के आग्रह पर उसका नाम 'श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम' ही रखा गया। शुभ मुहूर्त में आश्रम शुरू हुआ। आश्रम आरम्भ होने के पूर्व स्वामी विश्वानन्द मेरे साथ गये थे। फनी महाराज भी थे। दरबार रावतवाला को तभी नई-नई गद्दी मिली थी। खूब धूमधाम के साथ कार्य शुरू हुआ। बहुत-से लोग दवा आदि लेने आते। गुजराती भाषा में स्वास्थ्य-सम्बन्धी दो चार्ट छपा कर बँटवाये गये। क्षय रोगियों के लिए निर्देश भी बँटवाया गया। आठ हरिजन स्कूलों का भी श्रीगणेश किया गया। कुल चौबीस गाँव थे, उनमें से आठ स्कूल – संख्या अच्छी ही थी। गाँवों में स्वास्थ्य-रक्षा के लिए – बड़े-बड़े गाँवों में सफाई तथा रोशनी का प्रबन्ध कराया गया। एक झाड़ूदार सभी रास्तों को साफ करके सारा कूड़ा-कचरा एक खाद के गड्ढे में फेंकेगा। झाड़ूदार को काम के बदले जमीन दी जायेगी। खाद को बेचकर जो पैसा मिलेगा, उससे सड़कों के विशेष-विशेष स्थानों पर खासकर कृष्ण पक्ष की अँधेरी रातों में रोशनी का प्रबन्ध किया जायेगा। इससे बचे हुए पैसों को रास्ते-घाटों की मरम्मत आदि पर खर्च किया जायेगा।

त्रिभुवन भाई के माध्यम से एक काम और करवाया गया था, जो सर्वत्र अनुकरणीय है – जो किसान वृद्धावस्था या अपंगता के कारण कार्य करने में अक्षम होंगे और जो कृषक-पत्नियाँ विधवा पुत्रहीन या वृद्ध हो जायेंगी, उनके खेतों पर रियासत इस शर्त के साथ अन्य किसानों से खेती करवायेगा कि उससे उत्पन्न होनेवाला अनाज उन्हीं लोगों को मिलेगा और यदि वह वर्ष भर के लिए पर्याप्त न हो, तो रियासत उसकी पूर्ति करेगी। यह व्यवस्था इसलिये की गयी थी, ताकि किसी को अन्नाभाव के कारण भिक्षावृति न करनी पड़े और न किसी की अधीनता स्वीकार करके कष्ट उठाना पड़े। यह बड़े काम की चीज हुई थी।

हरिजन लड़के गन्दे कपड़ों में स्कूल आते थे, अत: रियासत की ओर से उनके लिए साल में दो सेट कपड़े – दो पाजामे, दो टोपियाँ और दो कुर्तों की व्यवस्था कराई गयी। वस्त्रों को धोकर साफ करने के लिए सप्ताह में एक बार सोडा और साबुन या रीठे का फल दिलवाया जाता।

१९३० से १९३७ ई. के दौरान ये सब काम हुए थे। १९३७ ई. में जब त्रिभुवन भाई की मृत्यु हुई, तब मैं बेलूड़ मठ में था। श्रीरामकृष्ण जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में १९३६ ई. के अन्त में मैं मठ चला गया था। इसके बाद बिलखा फिर कभी नहीं गया। उनके देहावसान के बाद उनका बड़ा लड़का दीवान हुआ। देनदारी इतनी बढ़ गयी कि रियासत बिकने की नौबत आ गयी थी, क्योंकि राजकुल के लड़कों ने यूरोप में घूमकर मौज-मस्ती करके ऋण चढ़ा लिया था। वैसे यह सब राजा के सहयोग से ही हुआ था। २० लाख की देनदारी थी और आमदनी थी ४-५ लाख रुपये। ... जैसा सर्वत्र होता है, वैसा ही यहाँ भी हुआ था।

सब ज्ञात होने पर मैंने सेवाश्रम को बन्द करने के लिये लिख दिया। इधर वे लोग बन्द करना नहीं चाहते थे, उसमें कुछ भावना की बात भी थी। यद्यपि स्वयं महासचिव पूज्य सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) काठियावाड़-भ्रमण के लिये आकर यहाँ ७-८ दिन ठहरे थे और उन्होंने इसे पसन्द भी किया था, तथापि कहीं मैं इस एक छोटे-से स्थान में ही बँधकर न रह जाऊँ, इसीलिये मठ के संचालक बार-बार इस कार्य से सम्पर्क त्याग देने को कह रहे थे। यह बात जब मैंने त्रिभुवन भाई को बतायी, तो वे मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहने लगे – "स्वामीजी, जितने दिन मैं हूँ, उतने दिन रहिये, फिर आपकी इच्छा।" फिर जब उनसे विदा लेने गया और बताया कि श्रीरामकृष्ण शताब्दी उत्सव में भाग लेने के लिए बेलूड़ मठ से निमंत्रण आया है और महासचिव महाराज ने आने के लिये दृढ़तापूर्वक लिखा है, तो उन्होंने सजल नेत्रों के साथ विदा करते हुए कहा – "लगता है अब और भेंट नहीं होगी।" और सचमुच ऐसा ही हुआ। १९३७ ई. में उनका देहान्त हो गया।

❖ (क्रमश:) ❖

नारदीय भक्ति-सूत्र (१६)

स्वामी भूतेशानन्द

(रामकृष्ण संघ के बारहवें अध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी ने अपने १० वर्षों के जापान-यात्राओं के दौरान वहाँ के करीब ७५ जापानी भक्तों के लिये अंग्रेजी भाषा में, प्रतिवर्ष एक सप्ताह 'नारद-भक्ति-सूत्र' पर कक्षाएँ ली थीं। उन्हें टेप से लिपिबद्ध और सम्पादित करके अद्वैत आश्रम द्वारा एक सुन्दर ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया गया है। वाराणसी के श्री रामकुमार गौड़ ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः ।।३४।।

अन्वयवयार्थ – **तस्याः** – (उस) भक्ति के, **साधनानि** – साधन, **आचार्याः** – आचार्यगण, **गायन्ति** – गाते हैं।

अर्थ – महान् आचार्यगण भक्ति प्राप्त करने के इन साधनों का गान करते हैं।

तत् तु विषय-त्यागात्
सङ्गत्यागात् च ।। ३५ ।।

अन्वयवयार्थ – **तत्** – वह (भक्ति होती) **तु** – है, **विषय-त्यागात्** – विषयों के त्याग से, **च** – और, **सङ्ग-त्यागात्** – आसक्ति के त्याग से।

अर्थ – उस (भक्ति) की प्राप्ति भोग्य विषयों के त्याग तथा उनके प्रति आसक्ति के त्याग से होती है।

अव्यावृत भजनात् ।।३६।।

अन्वयवयार्थ – **अव्यावृत** – निरन्तर, **भजनात्** – उपासना से।

अर्थ – निरन्तर पूजा-उपासना से (भक्ति की प्राप्ति होती है)।

लोकेऽपि भगवद्-गुण-श्रवण-
कीर्तनात् ।।३७।।

अन्वयवयार्थ – **लोके अपि** – सामान्य जीवन-चर्चा के दौरान भी, **भगवद्** – भगवान की, **गुण** –लीला के, **श्रवण-कीर्तनात्** – श्रवण-कीर्तन से।

अर्थ – जीवन के सामान्य क्रिया-कलापों के दौरान भी ईश्वर की लीलाओं के श्रवण-कीर्तन से भक्ति प्राप्त होती है।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपा-लेशाद् वा ।।३८।।

अन्वयवयार्थ – **मुख्यतः** – मुख्य रूप से, **महत्-कृपया-एव** – महात्माओं की कृपा से ही, **वा** – अथवा, **भगवत्कृपा-लेशाद्** – थोड़ी-सी भगवत्कृपा द्वारा।

अर्थ – तथापि (यह भक्ति) मुख्य रूप से, महात्माओं की कृपा अथवा भगवत्कृपा के लेश मात्र से प्राप्त होती है।

अब हम भगवद्-भक्ति प्राप्त करने के विभिन्न उपायों की चर्चा कर रहे हैं। सूत्र कहता हैं कि भक्तियोग के महान् आचार्यों द्वारा भक्ति को प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के साधन बताये गये हैं। देवर्षि नारद भक्ति को प्राप्त करने के इन विभिन्न साधनों का वर्णन करते हैं।

विषयों के त्याग और उनके प्रति आसक्ति के त्याग द्वारा भक्ति प्राप्त की जा सकती है। यहाँ जो साधन बताये गये हैं, उनमें पहला है – विषयों की इच्छा का त्याग और उनके प्रति आसक्ति का भी त्याग। दूसरा – ईश्वर के प्रति अविच्छिन्न भक्ति। और तीसरा – ईश्वर का निरन्तर स्मरण या ईश्वर के प्रति भक्ति का सतत प्रवाह। यहाँ तक कि सांसारिक क्रिया-कलापों में लगे रहते हुए भी व्यक्ति को ईश्वर के लीला गुणगान-श्रवण करते रहना चाहिये और इस प्रकार मन को सर्वदा ईश्वर-चिन्तन से युक्त रखना चाहिये। ये सभी भक्ति में सहायक हैं, पर भक्ति तो मुख्य रूप से महात्माओं की कृपा से अथवा जरा-सी भगवत्कृपा से प्राप्त होती है।

ये अन्तिम दो बातें क्यों कही गयीं? इसलिये कि सौभाग्यवश हमारा कुछ महात्माओं से सम्पर्क हो सकता है और उस सम्पर्क द्वारा हमारे भीतर भक्ति उद्दीप्त हो सकती है। यह अंश हम कर सकते हैं। हम महात्माओं का संग प्राप्त कर सकते हैं और उनकी कृपा से अपने भीतर भक्ति को जगा सकते हैं।

और दूसरा अंश क्यों? भले ही हम साधुजनों की संगति न ढूँढ़ें, पर कभी-कभी वह संगति हमें मिल जाती है। परन्तु भगत्वकृपा से ही हमारे भीतर भक्ति की उद्दीपना होती है। अत: भगवत्कृपा ही मुख्य बात है और वह भी हमारे अनजाने ही हमें प्राप्त हो जाती है। हम उसे नहीं जानते, हम उसे पाने की योग्यता नहीं रखते, लेकिन कभी-कभी ईश्वर हमारे ऊपर अयाचित कृपा कर देते हैं। हमें साधु-जनों का संग करना चाहिये, पर कभी-कभी लोग वह भी नहीं करते। कभी-कभी अकारण ही हम पर भगवत्कृपा हो जाती है और हमें भक्ति मिल जाती है। अत: यह जरूरी नहीं है कि भक्ति निश्चित रूप से साधुसंग द्वारा ही हो – यह उसके बिना भी मिल सकती है। तात्पर्य यह है कि यदि हम भक्ति के लिये प्रतीक्षा करें, तो यह बिल्कुल नहीं आयेगी। हमें भगवत्कृपा नहीं भी प्राप्त हो सकती है, क्योंकि यह जानने का कोई उपाय ही

नहीं है कि यह कृपा कैसे आयेगी। यदि यह बिना शर्त है, तो फिर स्वभाविक रूप से ही उसे प्राप्त करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है।

अत: दो बातें कहीं गईं। प्रथमत: तो साधु-सन्तों की कृपा, जिसे हम ढूँढकर प्राप्त कर सकते हैं। द्वितीयत: हमें यह समझ लेना होगा कि केवल भगवत्कृपा द्वारा भी भक्ति मिल सकती है। ये दोनों बातें ईश्वरीय कृपा की महत्ता को दिखाने के लिये कही गयी हैं, जो किसी भी व्यक्ति को अयाचित रूप से मिल सकती है। भगवत्कृपा किसी को भी सहज रूप से प्राप्त हो सकती है। यदि यह कृपा कहलाती है, तो निश्चित रूप से इसे बिना शर्त ही आना होगा। कृपा में शर्त कैसी ! कृपा के द्वारा हम कुछ ऐसी चीजें प्राप्त करते हैं, जिसके लिये हम योग्य या समर्थ नहीं थे। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें कोई संगति नहीं ढूँढनी है या कोई साधना नहीं करनी है। परन्तु तब हमें अनिश्चित काल तक बिना कुछ प्राप्त किये प्रतीक्षा करनी होगी, क्योंकि यह जरूरी नहीं कि ईश्वर हर-किसी पर अपनी कृपा वर्षा ही दें। यह उनकी इच्छा पर है। अत: हम कृपा के लिये व्यर्थ ही प्रतीक्षा करते रह सकते हैं। इसीलिये दोनों अंशों का उल्लेख किया गया है।

एक बात यह है कि साधु-महात्माओं को पाना आसान नहीं है। साधुसंग दुर्लभ और अबोधगम्य है। साधुसंग का सौभाग्य हमें विरले ही प्राप्त होता है। फिर, हम समझ नहीं सकते और अपने लिये निर्णय नहीं कर सकते कि महात्मा कौन है, उसकी संगति कैसे प्राप्त हो, तथा उनकी संगति कैसे हममें परिवर्तन लाये। ये सभी बातें अबोधगम्य हैं। हम इसे नहीं समझ सकते और तर्कसंगत भी नहीं बना सकते। ये बातें हमारी समझ के परे हैं। यदि हमें साधुसंग मिलता है, तो वह निश्चित रूप से फलप्रसू होता है। यह एक रामवाण औषधि है, यह निश्चित रूप से अपना प्रभाव उत्पन्न करता है। अर्थात् महात्माओं का संग कभी विफल नहीं जा सकता। अत: यदि हमें किसी महात्मा की कृपा मिली है, तो हमें समझ लेना चाहिये कि हमें जन्म-मृत्यु के सागर को पार करने का साधन मिल चुका है। साधुसंग हमें नवजीवन प्रदान करेगा और हमें भी सन्त में रूपान्तरित कर देगा। इसीलिये साधुसंग पर बल दिया गया है। यद्यपि यह नहीं जाना जा सकता कि इस रूपान्तरण की प्रक्रिया क्या है, परन्तु यह बात निश्चित है कि महात्माओं की संगति मिल जाने पर ईश्वर के प्रति परम भक्ति का उद्दीपन अवश्य होता है।

महत् सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।।३९।।

अन्वयार्थ – **महत्** – महात्माओं की, **संग** – संगति, **दुर्लभः** – दुर्लभ है, **अगम्यः** – अबोधगम्य है, **च** – और, **अमोघः** – अमोघ है।

अर्थ – महात्माओं का संग दुर्लभ, अबोधगम्य और अमोघ होता है।

यह सूत्र साधुसंग का गुणगान करता है। सर्वप्रथम, यह दुर्लभ है। ऐसा क्यों? इसलिये कि हम भले ही कुछ महान् लोगों के सान्निध्य में रहे हों, तो भी उनके साथ हमारा वास्तविक संग नहीं हो पाता। किसी सन्त के पास रहने मात्र से काम नहीं बनता। उदाहरणार्थ दक्षिणेश्वर मन्दिर के परिसर में और उसके आसपास रहनेवाले लोगों का जीवन देखिये। वे लोग नित्य श्रीरामकृष्ण के दर्शन और सान्निध्य का अवसर प्राप्त करते थे, परन्तु क्या वे सचमुच उनका संग प्राप्त करते थे? – नहीं। यहाँ तक कि उनके घनिष्ठ सम्पर्क में रहनेवाले लोग भी उनका संग नहीं प्राप्त करते थे। अत: ऐसे लोगों के लिये भी, साधुसंग पाना दुर्लभ है। केवल दैहिक निकटता ही साधुसंग नहीं है। केवल उसी से कुछ विशेष लाभ नहीं मिलता। दूसरी ओर, हम किसी साधु के वास्तविक संग में रहे बिना भी उसके निकट रह सकते हैं।

इस प्रकरण में मुझे एक घटना याद आती है। एक सज्जन उद्‌बोधन स्थित माँ श्री सारदादेवी के निवास पर आये। हम लोग स्वामी सारदानन्द के साथ बैठे थे, तभी उस व्यक्ति ने सहसा कहा – "मैं साधुसंग करने आया हूँ।" तब सारदानन्द जी ने वही कहा, जैसा कि मैंने अभी बताया कि दक्षिणेश्वर के मन्दिर में रहनेवाले लोग निरन्तर श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में रहते थे। आसपास रहनेवाले लोग भी नित्य उनके सम्पर्क में आते थे। पर उनमें से किसी में भी आध्यात्मिक उद्दीपना का कोई उदाहरण नहीं मिलता। स्वामी सारदानन्द ने विशेष रूप से कहा था – "किसी में भी नहीं।"

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ।।४०।।

अन्वयार्थ – **लभ्यते** – यह (साधुसंग) प्राप्त हो सकता है, **अपि** – भी, **तत्** – उनकी (ईश्वर की), **कृपया** – कृपा के द्वारा, **एव** – ही।

अर्थ – यह (साधुसंग) उनकी (ईश्वर की) कृपा के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ।।४१।।

अन्वयार्थ – **तस्मिन्** – उन (ईश्वर) में, **तत्-जने** – उनके भक्तों में, **भेद-अभावात्** – भेद के अभाव के कारण।

अर्थ – इसका कारण यह है कि ईश्वर और उनके भक्त अभिन्न होते हैं।

❖ (क्रमश:) ❖

ईशावास्योपनिषद् (१४)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने वर्षों पूर्व रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग-भवन में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने ने किया तथा वक्ता की पूर्ण सहमति से इसका सम्पादन एवं संयोजन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है।)

सर्वत्र आत्मदर्शन करने वाले पुरुष के अन्य विधेयात्मक लक्षण क्या हैं? उनकी कैसी अवस्था होती है? ऋषि इसे अगले सातवें मन्त्र में हमें बता रहे हैं –

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।७।।

– जब साधक इस सिद्धि की अवस्था में पहुँचकर अनुभव करता है कि सर्वत्र, सभी प्राणियों में एक परमात्मा, ईश्वर ही विद्यमान हैं, तब वह शोक-मोह नहीं करता है।

– सर्वत्र आत्मदर्शन करनेवाले, सभी प्राणियों में ईश्वर-दर्शन करने वाले महापुरुष को किसी भी प्रकार का शोक और मोह नहीं होता। ईशावास्य उपनिषद के इस सातवें मन्त्र में मानो 'गागर में सागर' भरा हुआ है। कितना अद्भुत यह मन्त्र है! यह इतना महान है कि सारे जीवनभर इसका चिन्तन किया जा सकता है। इस मन्त्र में जिस पूर्णता की बात कही गयी है, यदि उस अवस्था में हम पहुँच जायँ, तो हमारे मन में कहाँ शोक और कहाँ मोह रहेगा !

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि – सभी प्राणियों में, यहाँ भूत अर्थात् केवल जीवित नहीं, जो चर और अचर (Whatever has been made or whatever has been created) सब में, आत्मा एव – आत्मा को ही देखते हैं, अनुभव करते हैं। ऐसे विजानत: – आत्मद्रष्टा के, सर्वत्र परमात्मा को ही देखने वाले ज्ञानी के हृदय में, तत्र को मोह: क: शोक: – कहाँ शोक और कहाँ मोह रहता है! ऐसा व्यक्ति शोक और मोह से मुक्त हो जाता है। क्योंकि वह एकत्वं अनुपश्यत: – उन सभी प्राणियों में एक परमात्मा को ही देखता है। उसे दूसरा कुछ नहीं दिखता। इसमें अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है 'विजानत:', 'शोक' और 'मोह'। मोह अज्ञान से उत्पन्न होता है और हमारे सभी दु:खों का कारण मोह है। भगवान ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया और अर्जुन से पूछा कि क्या तुमने सब कुछ ध्यानपूर्वक सुना तथा उससे तुझे क्या लाभ हुआ? क्या कुछ उपलब्धि हुई? तब अर्जुन तत्काल कहते हैं –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।१८/७३

यह मोह के निवृत्ति की फलश्रुति है। अर्जुन कहते हैं – मेरा मोह नष्ट हो गया है और 'स्मृतिर्लब्धा' अर्थात् मैं वही नित्य-मुक्त-शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूँ, इसकी स्मृति मुझमें जाग गयी है।

अब इस सातवें मन्त्र में ऋषि ने जो उपदेश दिया है, उनमें से सर्वप्रथम 'विजानत:' शब्द पर ध्यान दें – 'विजानत:' – जिसने सब कुछ में आत्मा का दर्शन कर लिया है। ऐसा व्यक्ति क्या करता है? 'एकत्वम् अनुपश्यत:' उसको सब जगह एक ही आत्मा के दर्शन होते हैं। 'सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत्' – उसके लिए सम्पूर्ण सृष्टि आत्मस्वरूप हो जाती है। आत्मा तो सब समय अवस्थित है ही। केवल हमें उसका विस्मरण हो गया था। किन्तु जब व्यक्ति को आत्मज्ञान होता है, तब उसके हृदय में उसका सतत बोध होता रहता है – उस व्यक्ति को 'विजानत:' कहते हैं। 'विजानत:' माने जो विशेष रूप से जानता है। सांसारिक क्षेत्र में, जैसे कार्यालयीय कार्य या समाजिक क्षेत्र में जो अधिक जानता है, उसे हम अधिक जानकार व्यक्ति समझते हैं। किन्तु आध्यात्मिक जीवन का ज्ञान कुछ अलग है। आध्यात्मिक जीवन में ज्ञान का कुछ विशेष महत्व है। ज्ञान के दो भाग हैं – १. प्रपंच का ज्ञान २. परमात्मा का ज्ञान। हम लोग प्रपंच के ज्ञान को ही ज्ञान समझते हैं। रामकृष्ण वचनामृत के लेखक श्री 'म' को हम जानते हैं। वे कोलकाता विश्वविद्यालय के स्नातक थे और वैसे भी वे विद्याव्यसनी थे। जब वे श्रीरामकृष्ण देव के पास आये, तो ठाकुर ने उनसे पूछा, "तुम्हारा विवाह हो गया है?" उन्होंने उत्तर दिया 'हाँ, महाराज हो गया है'। "अच्छा ! तुम्हारी पत्नी कैसी है?" मास्टर कहते हैं, 'अच्छी है, किन्तु अज्ञानी है'। तब श्रीरामकृष्णदेव विरक्त होकर कहते हैं – 'क्या तुम ज्ञानी हो?' मास्टर महाशय को बड़ा धक्का लगा। मास्टर महाशय की यह धारणा थी कि ज्ञान का तात्पर्य है, जो व्यक्ति पढ़ा-लिखा है। तब स्वयं श्रीरामकृष्णदेव ने मास्टर महाशय को समझाया – देखो, ईश्वर ही सत्य है, और सब अनित्य है। ईश्वर को जानना, अनुभव करना ही ज्ञान है। अनित्य और मिथ्या इन दो शब्दों का अर्थ समझ लें, क्योंकि इससे हम बहुत बार भ्रम में पड़ जाते हैं। मिथ्या वह है, जिसका तीनों कालों में अस्तिव न हो। भूत, वर्तमान और भविष्य में जो नहीं है, वह मिथ्या है। जैसे 'घोड़े की सिंग' यह मिथ्या है। अनित्य वर्तमान में रहता है, किन्तु भूत, भविष्य में नहीं रहेगा। जैसे 'टेबल' – यह कुछ साल पहले नहीं था। एक लकड़ी के रूप में किसी कारखाने में पड़ा था। उसके पहले

जंगल में किसी वृक्ष के रूप में था। उसके पहले बीज के रूप में था, और भविष्य में देखेंगे तो, यह 'टेबल' भी नहीं रहेगा। जो वस्तु वर्तमान में दिखती है, किन्तु भूतकाल में नहीं थी, और भविष्य में भी नहीं रहेगी, उसका नाम अनित्य है। तो यह संसार अनित्य है, लेकिन मिथ्या नहीं है। आप हम सब व्यवहार करते हैं। अभी हम प्रवचन सुन रहे हैं, पंखा चल रहा है, इसे हम मिथ्या कैसे कहेंगे? अभी है, किन्तु स्थायी रूप में नहीं है। श्रीरामकृष्ण देव मास्टर महाशय से कहते हैं – 'ईश्वर ही सत्य है, बाकी सब अनित्य है। यह संसार अनित्य है। यह अनित्य संसार हमारे व्यवहार के लिए मिला है, इसे पकड़कर रखने के लिए नहीं। प्रपंच का ज्ञान, अनित्य का ज्ञान है, नित्य का नहीं। अनित्य का ज्ञान अज्ञान है। बड़ा-से-बड़ा कोई भी व्यक्ति हो उसे अनित्य का ज्ञान होता है। किन्तु जिस व्यक्ति को नित्य का ज्ञान होता है, वही विजानत: है, वही ज्ञानी है।

किसी क्षेत्र के बड़े व्यक्ति को मोह रहता है, शोक दूर नहीं होता है, दु:ख रहता है, क्योंकि वे सांसारिक विषयों के ज्ञान वाले व्यक्ति हैं। वे 'विजानत:' नहीं हैं। इसलिये वह व्यक्ति सभी में अपनी आत्मा का दर्शन नहीं कर सकता। जो वेदान्त शास्त्र को पढ़ लिया है, उपनिषद पढ़ा है, भाष्य पढ़े हैं, और व्याख्या कर रहा है, किन्तु इससे क्या होगा? 'शब्द-जालं महारण्यं चित्त भ्रमणकारणम् – शब्दों का जाल चित्त को इधर-उधर घूमा देता है। उस व्यक्ति ने कागजी विद्या तो पढ़ ली है, किन्तु उसे सब में आत्मा का दर्शन नहीं हुआ है। इसलिए उस व्यक्ति को शोक-मोह हो जाता है, क्योंकि वह एक को नहीं देखता है, अनेक को देखता है। जब तक हमें आत्मज्ञान नहीं होता, ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता, तब तक यह विचित्र-सी सृष्टि जो अनेकता से पूर्ण है, वह हमें सत्य प्रतीत होगी। इसी में हमें व्यवहार करना पड़ेगा। जब अनेकता से पूर्ण इस सृष्टि में व्यवहार करना है, तब सुख-दु:ख आते ही रहेंगे, अधिकतर दु:ख ही आते हैं। किन्तु हम लोग इसका विचार नहीं करते। हम प्रपंच का ज्ञान, अनित्य के ज्ञान को प्राप्त करने में अपने तन-मन की सारी शक्ति लगा देते हैं, इसमें अपनी सारी बुद्धि लगा देते हैं। जब तक हम अनित्य का चिन्तन करते रहेंगे, इससे हमारी प्रज्ञा में परिवर्तन नहीं आ सकता। जब तक हमारे अन्त: करण में, हमारी चेतना में परिर्वतन नहीं हो जाता, तब तक हमें एकत्व का अनुभव नहीं हो सकता। सर्वत्र वही आत्मा विराजमान है। व्यक्ति के रंध्र-रंध्र में जो आत्मा विराजमान है, ऐसे आत्मा का दर्शन प्रापंचिक बुद्धि से, सांसारिक बुद्धि के ज्ञान से नहीं हो सकता है। इसलिए हमारे मन से शोक और मोह नहीं जाता है। तब विजानत: कौन है? विजानत: वह है – जिसने अपनी आत्मा का अपने अंत:करण में दर्शन कर लिया है, जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। उस व्यक्ति के हृदय से भेद दूर हो जाता है। वह विचित्र, विभिन्न रूपों में भी ईश्वर को ही देखता है। जब वह अपनी आत्मा का सतत दर्शन करता है, तब उसके हृदय से शोक और मोह चले जाते हैं। ये शोक और मोह तभी जायेंगे, जब हम एकता का अनुभव करेंगे। शोक और मोह का मनोविज्ञान क्या है? शोक है – भूतकाल को वर्तमानकाल में घसीटना। जो घटना बीत गयी है, उसी के प्रति हमको शोक होता है। दु:ख आने वाले किसी वस्तु या व्यक्ति से नहीं होता है। अगर आपके ५०/- (पचास) रू. पिछले दिन गुम गये, तो दु:ख होता है। किन्तु यह जानकर कि कल पचास रूपये गुम जायेंगे, तब दु:ख नहीं होता है। जो घटना घट चुकी है, उसके कारण हमको शोक होता है। मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि वह भूतकाल की बातों का स्मरण करता है, उसको सोचता रहता है। इसके कारण उसे शोक और दुख होता है। किन्तु जो आत्मज्ञानी व्यक्ति है, यदि वह अतीत की भी स्मृति करता है, तो उसे उसमें भी उसी ईश्वर के दर्शन होते हैं, जो उसे वर्तमान में हो रहे हैं। क्योंकि ईश्वर में भूत-भविष्य नहीं होता, ईश्वर सदैव वर्तमान में हैं। भूतकाल हमारे मन की कल्पना है। काल तो अखंड है। खण्ड तो हमने किया है। हमारे हिसाब से आज अगस्त महिना हो गया, किन्तु ये सब मनुष्य की बनायी हुई कल्पना मात्र है। अगर हम अगस्त, सितम्बर, नवम्बर, यह तारीख, वह तारीख आदि, ये सब निकाल देंगे तो क्या काल समाप्त हो जायेगा? काल तो है ही। काल अपने आप में सदैव अवस्थित है। अपने व्यवहार में लाने के लिए हमने उसे वर्ष, महिने, दिन आदि में विभाजित किया है। ऐसा जो कालातीत पुरुष है, उसे शोक और मोह नहीं हो सकता। उसे शोक इसलिये नहीं होता, क्योंकि उसके लिए कोई भूतकाल नहीं है, सब कुछ वर्तमान में है। वह 'अस्ति' – 'है' का बोध करता है। 'है' के बोध में शोक चला जाता है।

अब 'मोह' के बारे में साचें। 'मोह' क्या है? वर्तमान को भविष्य में घसीटने की प्रक्रिया। कैसे? मेरा शरीर जैसे आज है, वैसे कल भी रहे, मेरे बच्चे मेरे पास रहें, मेरी सम्पत्ति बनी रहे, ये सब वस्तुएँ बनी रहे, इसका नाम है मोह। इन वस्तुओं को छोड़ने का नाम लिया, तो दु:ख होता है। यदि आत्मज्ञानी व्यक्ति भविष्य में देखता है, तब भी उसे उसी ईश्वर के दर्शन होते हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य में उसे उसी परमात्मा के दर्शन होते हैं, क्योंकि उसके मन में भूत और भविष्य की धारणा नहीं होती है। भूत-भविष्य की धारणा जिसके मन में नहीं है, उसे शोक और मोह हो नहीं सकता।

❖ (क्रमश:) ❖

विजया-दशमी का तात्पर्य

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, जगदलपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

विजया-दशमी का पर्व विजय का पर्व है — शुभ की अशुभ पर, अच्छाई की बुराई पर, देवत्व की असुरत्व पर, दुर्गा देवी की महिषासुर पर विजय का पर्व है। यह देवी के शक्ति-बोधन का पर्व है, जब उनकी कृपा से शक्तिमान होकर श्रीराम ने रावण का वध किया था। अतएव यह विजयोल्लास के रूप में मनाया जाता है। श्रीराम धर्म की शक्ति के मूर्त विग्रह हैं और रावण भौतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनों शक्तियों की टक्कर शाश्वत है। इस टक्कर में अधिकांशतः भौतिक शक्ति ही अधिक विजयी होती है। फलस्वरूप संसार अशान्ति, तनाव और असन्तुलन का ही अधिक शिकार होता रहता है। बहुधा मनुष्य की ऊपर से धार्मिक दिखनेवाली शक्ति भी वस्तुतः भौतिक शक्ति की प्रबलता में ही वृद्धि करती है। रावण भी शिवभक्त है, शिव की उपासना करता है, याग-यज्ञ करता है, परन्तु वह धर्म की शक्ति को बढ़ाने के लिये नहीं, अपितु अपने भौतिक प्रताप में वृद्धि करने के लिये ही ये सारे कर्मकाण्ड करता है। इससे धर्म की शक्ति क्षीण हो जाती है। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति भी जब दुर्योधन का पक्ष लेते हैं, तो वे यह भूल जाते हैं कि वे अधर्म की ही पीठ ठोक रहे हैं और इस प्रकार धर्म को शक्तिहीन बना रहे हैं। धार्मिक व्यक्ति का ऐसा अविवेक ही अधर्म और भौतिकता का पोषण करता है।

श्रीराम अपने जीवन के माध्यम से धर्म के सही स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं और रावण पर विजय प्राप्त करके यह दर्शाते हैं कि यदि हमारी धर्मनिष्ठा का उद्देश्य और प्रतिफल धर्म की प्रतिष्ठा ही है, तब तो प्रचण्ड भौतिक शक्ति भी ऐसी धर्मशक्ति के सम्मुख घुटने टेक देगी। श्रीराम की विजय हमें धर्म की विजय के सम्बन्ध में आश्वस्त करती है।

'राम-चरित-मानस' में एक प्रसंग आता है। विभीषण युद्धभूमि में श्रीराम को रथहीन तथा रावण को रथ पर सवार देखकर अधीर हो जाते हैं और उनके मन में श्रीराम के विजय के विषय में सन्देह पैदा होता है। वे श्रीराम से कहते हैं - "हे नाथ, न आपके रथ है, न तन की रक्षा करनेवाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवान वीर रावण किस प्रकार जीता जायेगा?" श्रीराम उत्तर देते हैं - "सुनो सखे, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और सदाचार उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, इन्द्रिय-दमन और परोपकार - ये चार उसके घोड़े हैं; जो क्षमा, दया तथा समतारूपी डोरी से रथ में जोते हुए हैं। ईश्वर का भजन ही उस रथ को चलानेवाला चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और सन्तोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और स्थिर मन तरकस के समान है। मनःसंयम, यम और नियम - ये बहुत-से बाण हैं। सच्चरित्र, ज्ञानी और साधु व्यक्तियों तथा गुरु का पूजन अभेद्य कवच हैं। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे धीर बुद्धिवाले सखा, सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ धर्मजयी रथ हो, वह वीर जन्म-मृत्युरूपी महान् दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है, फिर रावण की तो बात ही क्या है!"

श्रीराम का यह कथन मात्र त्रेतायुग और केवल उन्हीं के जीवन का सत्य नहीं, बल्कि वह आज का भी और हममें से प्रत्येक के जीवन का भी सत्य है। हम सबके भीतर यह राम-रावण युद्ध चल रहा है। यदि हम अपने जीवन में श्रीराम को विजयी देखना चाहते हैं, तो हमें इस धर्मरथ का सहारा लेना पड़ेगा। विजया-दशमी के दिन रावण के कागजी पुतले को जलाकर जो हम तनिक देर उल्लास का अनुभव करते हैं, उसे देख रावण हमारी मूर्खता पर ठहाका मारकर हँसते हुए कहता है — "मूर्खो, वर्ष में ५ मिनट मेरा पुतला जलाकर यदि तुम विजयोत्सव का आनन्द लेना चाहो, तो ले लो, लेकिन ३६४ दिन, २३ घण्टे और ५५ मिनट तो मैं ही तुम्हें मारता हूँ।"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रावण को 'मोह' का प्रतीक बताया है। 'गीतावली' में वे लिखते हैं — 'मोह दशमौलि' अर्थात् मोहरूपी रावण के दस सिर हैं। इस मोह के दसों सिरों को कुचलने का पर्व होने के कारण विजया-दशमी को 'दशहरा' भी कहा गया है। अतएव विजया-दशमी की सार्थकता इसी में है कि हम इस दुर्दान्त मोह को, जो हमें सतत मार रहा है, जीतने के लिये श्रीराम के चरित्र से उत्साहित और अनुप्राणित होकर एक नया संकल्प लें और अपने जीवन में पूर्वोक्त धर्मरथ के आनयन की अनवरत चेष्टा का साधु-व्रत अगले वर्ष के लिये फिर से दुहरायें। ❑❑❑

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

(७८) सकल दुःखदायक अभिमाना

एक दिन परशुरामजी अपने आराध्य भगवान शंकर का दर्शन करने कैलाश पर्वत पर जा पहुँचे। द्वार पर गणेशजी चौकसी कर रहे थे। उन्होंने परशुरामजी को थोड़ा रुकने को कहा। शीघ्रकोपी परशुरामजी ने इसे अपना अपमान समझा और वे जबरन अन्दर प्रवेश करने लगे। इससे गणेशजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने सोचा – ''इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करने की प्रतिज्ञा करनेवाले इस ब्राह्मण का अहंकार दूर करने का यह अच्छा अवसर है। दोनों में मल्ल-युद्ध हुआ। गणेशजी पहले तो स्वयं गिर गये और फिर विराट रूप धारण कर उन्होंने परशुरामजी को अपनी सूँड़ में लपेटकर घुमाना शुरू किया। इससे परशुरामजी शिथिल पड़ गये। तब गणेशजी थोड़ा हट गये, परन्तु परशुरामजी के फरसे से उनके बायें दाँत को हल्का-सा स्पर्श होने से उनका दाँत टूट गया। उनके दाँत से रक्त की धारा बहने लगी। वे पीड़ा से चिल्लाने लगे और फिर उठ खड़े हुए।

कार्तिकेयजी पास ही खड़े थे। उन्होंने जाकर माता पार्वती को सारी बात बताई। वे तुरन्त वहाँ आ पहुचीं और क्रोधपूर्वक परशुरामजी से बोलीं – ''तुम इतने अहंकारी हो गये हो कि तुमने देवताओं में अग्रस्थान पानेवाले गणेश पर आघात करने की हिम्मत की !'' माता पार्वती का कोप देखकर परशुरामजी ठण्डे पड़ गये। वे कहीं शाप न दे दें, इस भय से उन्होंने मन-ही-मन शिवजी की प्रार्थना की। शिवजी वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने कहा – **न पार्वती परा, न गणेशात्परो वशी** (पार्वती के समान कोई पतिव्रता नहीं और गणेशजी के समान कोई जितेन्द्रिय नहीं)। फिर पार्वती से बोले – ''जैसे गणेश और कार्तिकेय आपके पुत्र हैं, वैसे ही परशुराम भी आपका पुत्र है। माता को तो अपने पुत्रों पर समान दृष्टि रखकर उनके अपराधों को क्षमा कर देना चाहिए।'' फिर परशुरामजी से बोले – ''तुमने भी अपने भ्राता गणेश का दाँत तोड़कर अपराध किया है। तुम्हें माता से क्षमा माँगनी चाहिए।'' परशुरामजी ने माता से क्षमा माँगी। माता पार्वती उनसे बोली – ''क्रोध तमोगुण का मूर्त रूप है, जो प्रमाद की ओर प्रवृत्त होता है। इससे विवेक नष्ट हो जाता है, मन पर नियंत्रण नहीं रहता। मर्यादा का भान नहीं रह जाता और मनुष्य उग्रता तथा अशान्ति के साथ-साथ हिंसा व विनाश का मार्ग अपनाता है। इसलिए क्रोध पर नियंत्रण करने में ही बुद्धिमत्ता है।''

(७९) अतुल सन्त-सेवा की महिमा

पैठन में एक धर्मपरायण महिला थी। उसका पति भी उसी के समान धार्मिक प्रवृत्ति का था। इस महिला ने एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प किया था, परन्तु उसके पति का सहसा निधन हो जाने के कारण वह संकल्प पूरा न हो सका। महिला के पास सीमित पूँजी थी। आय का कोई अन्य साधन न होने के कारण वह संचित धन भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। तब वह दूसरों के घरों में पानी भरकर अपना गुजर-बसर करने लगी। हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प पूरा करना उसे असम्भव प्रतीत हो रहा था। यह बात उसे जब-तब सालने लगी। तथापि उसे भगवान पर अटूट विश्वास था। उसे आशा थी कि उसका संकल्प कभी-न-कभी अवश्य पूरा होगा। उसके पड़ोसी को जब यह बात मालूम हुई, तो उसने इस विषय में संत एकनाथ से परामर्श लेने को कहा।

दूसरे ही दिन वह एकनाथजी से मिलने गई। सन्त ने उससे कहा – ''कल मैं तुम्हारे यहाँ भोजन करने आऊँगा। तुम्हारी मदद के लिए अपने पुत्र हरि को भेजूँगा।'' पिता के कहने पर हरि महिला के यहाँ गया और उसने भोजन पकाया। महिला ने एकनाथजी को भोजन परोसा। भोजन के बाद उन्होंने हरि से जूठी पत्तल को बाहर फेंकने को कहा। हरि जब नुक्कड़ पर पत्तल फेंकने लगा, तो यह देख चकित रह गया पत्तल फेंकने पर उसे हाथ में दूसरी पत्तल दिखाई दी। दूसरी पत्तल को फेंकने पर तीसरी पत्तल दिखाई दी। वह इस प्रकार पत्तलें फेंकने लगा और उनकी गिनती करने लगा। सारी पत्तलें खतम हुईं, तो उसने अन्दर आकर एकनाथजी को बताया कि पत्तल तो एक थी, मगर वे एक हजार हो गई थीं। यह बात जब महिला को मालूम हुई, तो सुनकर वह गद्‌गद हो गई। उसने एकनाथजी के चरणों में गिरकर कहा – ''आपकी कृपा से मेरा संकल्प पूरा हुआ।''

मनुष्य के मन में किसी कार्य को पूरा करने की प्रबल इच्छा हो, तो वह पूरी होती ही है। ❑❑❑

आबूरोड में गुरुभाइयों का मिलन

स्वामी विदेहात्मानन्द

(१८९१ ई. में स्वामी विवेकानन्द ने उत्तरी-पश्चिमी भारत का भ्रमण करते हुए राजस्थान में भी काफी काल बिताया था। तब वे वहाँ के अनेक लोगों – विशेषकर खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। तदुपरान्त वे कन्याकुमारी तथा मद्रास होकर पुन: खेतड़ी आये। मुंशी जगमोहन लाल ने उनके साथ मुम्बई जाकर उन्हें अमेरिका के लिये विदा किया। यात्रा के दौरान उन्होंने राजा को कई पत्र लिखे। उनके पूरे जीवन व कार्य में राजपुताना तथा खेतड़ी-नरेश का क्या स्थान रहा – क्रमश: इन सभी विषयों पर सविस्तार चर्चा होगी। – सं.)

आबू पहाड़ पर तपस्या

आबू रोड स्टेशन पर अमेरिका के लिये विदा लेते समय स्वामीजी ने अपने दोनों गुरुभाइयों को कोलकाता स्थित मठ में जाकर संघबद्ध रूप से रहते हुए श्रीरामकृष्ण के अपूर्व भावों का साधन एवं प्रचार करने का निर्देश दिया था, पर उनकी और भी कुछ काल तीर्थवास तथा तपस्या करने की इच्छा थी। स्वामीजी के निर्देश पर मुंशी जगमोहन लाल ने पहले ही स्वामी ब्रह्मानन्द तथा तुरीयानन्द जी के लिये आबू पर्वत के खेतड़ी-निवास में रहकर साधना करने की व्यवस्था कर दी थी। दोनों पुन: वहीं लौटकर तपस्या में डूब गये। वहाँ तुरीयानन्द जी भिक्षा लाकर अपने प्रिय गुरुभ्राता ब्रह्मानन्द जी को खिलाते और विविध प्रकार से उनकी सेवा करते।

वहाँ उन लोगों ने अप्रैल-मई तथा जून के लगभग तीन महीने बिताये थे। आबू पहाड़ से ही उन्होंने २३ जून को खेतड़ी के मुंशीजी के नाम एक पत्र में लिखा –

Abu, the 23rd June /93

My Dear Jogomohanlaljee,

The monsoon has made its appearance here in its vehement form it raining days & nights continuously without cessation and it is now time for us to descend ere long. We intend going Calcutta at present as we have been desired by Swamijee to do and have the long-wished-for Ramnath visitation for another attempt in a distance future. But before we reach Calcutta we like to visit the different holy places that we may come across on the way to it specially Sree Brindaban which becomes very much pleasant in these days during the Jhulan Festival. We shall only await your early reply to it.

Do you receive any news from Swamijee? We have been given to learn that he has been in Columbo recently from a letter of a friend of ours in Bombay. Please write if you have received from him any instructions for us at the time of his departure.

We are all right here and felt no sort of inconvenience or trouble at all. All the necessaries being readily supplied with and comforts carefully attended to. Please convey our sincere good wishes and ashirbad to His Highness the Maharaja.

Hoping you are in the enjoyment of good health and peace of mind.

Yours sincerely,
Swami Brahmananda &
" Turiananda[१]

पत्र का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है –

आबू, २३ जून /९३

प्रिय जगमोहन लाल जी,

मानसून का यहाँ प्रचण्ड रूप से आगमन हो चुका है। दिन-रात अविराम निरन्तर वर्षा हो रही है और अब शीघ्र ही हमारे नीचे उतरने का समय हो गया है। हमारे लिये स्वामीजी की जैसी इच्छा थी, तदनुसार इस समय हमारा कोलकाता जाने का विचार है और हमने रामनाथ (रामेश्वरम्) जाने की दीर्घकाल की इच्छा को सुदूर भविष्य में किसी अन्य समय के लिये छोड़ दिया है। परन्तु कलकत्ता पहुँचने के पूर्व हम मार्ग में पड़नेवाले विभिन्न तीर्थों की यात्रा करना चाहेंगे, विशेषकर श्री वृन्दावन की, जो इन झूलन-उत्सव के दिनों में बड़ा ही आनन्दमय हो उठता है। हम केवल आपके शीघ्र उत्तर की प्रतीक्षा करेंगे।

क्या आपको स्वामीजी का कोई समाचार मिला है? हमें मुम्बई के अपने एक मित्र से सूचना मिली है कि वे हाल ही में कोलम्बो में थे। उनके प्रस्थान के समय यदि उनसे हमारे लिये कोई निर्देश मिला हो, तो कृपया लिखें।

हम लोग यहाँ ठीक हैं और हमने किसी भी प्रकार की कठिनाई या असुविधा को अनुभव नहीं किया है। सभी आवश्यकताओं की तत्काल पूर्ति और सभी सुविधाओं की सावधानीपूर्वक व्यवस्था हो जाती है। कृपया महाराजा को हमारी हार्दिक शुभ-कामनाएँ तथा आशीर्वाद ज्ञापित करें।

आशा है आप उत्तम स्वास्थ्य तथा मन:शान्ति का आनन्द

१. खेतड़ी पेपर्स १९९९

ले रहे होंगे।

आपके विश्वासी

स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी तुरीयानन्द

इस पत्र से पता चलता है कि उनका मुम्बई के किसी परिचित के साथ पत्र-व्यवहार चल रहा था। वे मित्र सम्भवत: कालीपद घोष थे, जिनके घर कुछ माह पूर्व दोनों ने स्वामीजी के साथ निवास किया था।

अखण्डानन्द जी का भ्रमण

स्वामीजी के जयपुर-प्रवास के प्रसंग में हमने देखा कि उनके एक गुरुभाई गंगाधर (स्वामी अखण्डानन्द) परिव्राजक स्वामीजी की खोज में निकले थे। अनेक स्थानों में उनका पीछा करते हुए महीनों बाद आखिरकार उन्होंने उन्हें गुजरात के माण्डवी नामक स्थान में ढूँढ़ निकाला था। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि वे एकाकी भ्रमण करना चाहते हैं, अत: गंगाधर उनका पीछा छोड़ दें। इसके बाद अखण्डानन्द जी ने गुजरात के अनेक स्थानों में सुदीर्घ समय बिताया। इस काल के बारे में वे लिखते हैं – ''भावनगर (गुजरात) में मुझे सूचना मिली कि स्वामीजी अमेरिका गये हैं। वहाँ लगभग एक पखवारा निवास करने के बाद मैंने मुम्बई की यात्रा की। मार्ग में नडियाद में जूनागढ़-नवाब के दीवान हरिदास विहारीदास भाई के घर कुछ दिन कृष्णानन्द भिक्षु के साथ निवास तथा वेदों पर चर्चा हुई। हरिदास विहारीदास स्वामीजी के परम भक्त तथा सम्पन्न जमींदार थे। नडियाद से मैं मुम्बई गया। वहाँ लगभग एक माह रहने के बाद ठाकुर के भक्त राखाल हालदार के साथ पूना गया। वहाँ से मुम्बई लौटने के बाद राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) का एक पत्र मिला और उनके साथ मिलने हेतु मैंने आबू रोड की यात्रा की।''[२]

तीनों गुरुभाइयों का सम्मिलन

अखण्डानन्द जी आगे लिखते हैं – ''आबू रोड स्टेशन पर स्वामी ब्रह्मानन्द तथा स्वामी तुरीयानन्द से मिलन हुआ। यहीं पर ब्रह्मानन्द जी ने मुझसे कहा, 'जानते हो, स्वामीजी अमेरिका क्यों गये हैं?' मैं बोला, 'नहीं।' स्वामी ब्रह्मानन्द ने कहा, 'स्वामीजी जब पश्चिमी घाट पर्वत तथा महाराष्ट्र अंचल में भ्रमण कर रहे थे, उस समय आम लोगों का दुख-दारिद्र्य तथा बड़े लोगों के अत्याचार देखकर वे सर्वदा रोया करते थे। उन्होंने हम लोगों को बताया था, ''देखो भाई, इस देश में इतनी दुख-दरिद्रता है कि अभी यहाँ धर्म-प्रचार का समय नहीं हुआ है। यदि कभी इस देश की दुख-दरिद्रता दूर कर सका, तभी धर्म की बातें सुनाऊँगा। इसीलिए कुबेर के देश जा रहा हूँ, देखूँ यदि कुछ उपाय हो सके।'' '[३]

२. तथा ३. 'स्मृतिकथा' (बँगला ग्रन्थ), स्वामी अखण्डानन्द, तृतीय सं. १३७९, पृ. १०३-०४ (आगे 'स्मृतिकथा' नाम से उद्धृत)

अजमेर, पुष्कर होते हुए जयपुर

आबूरोड स्टेशन पर तीन-चार दिन बिताने के बाद तीनों गुरुभाई अजमेर गये। अजमेर शहर से पाँच-छह मील दूर पुष्कर तीर्थ है। पुष्कर में उन लोगों ने सावित्री पहाड़ तथा ब्रह्मा के मन्दिर का दर्शन किया। साधुगण आठ महीने तीर्थों का भ्रमण तथा वर्षा ऋतु के चार महीने एक जगह रहकर शास्त्र आदि की चर्चा करते हैं। तुरीयानन्द जी ने पहले एक बार दुष्कर तीर्थ पुष्कर में भी चातुर्मास किया था। इस प्रसंग में उन्होंने बताया था, 'पुष्करं दुष्करं' – तीर्थ अतीव सुन्दर और खूब निर्जन स्थान है। बड़ा आनन्द मिलता था।''[४]

पुष्कर में कुछ दिन बिताने के बाद तीनों गुरुभाइयों ने जयपुर के लिये प्रस्थान किया। अखण्डानन्द जी लिखते हैं – ''वहाँ पर हम लोगों ने सरदार हरिसिंह लाड़खानी के घर लगभग एक माह रहकर वहाँ के सभी द्रष्टव्य स्थानों का अवलोकन किया।''[५] जयपुर से ही **११ जुलाई १८९३** को स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने खेतड़ी राजा के निजी सचिव मुंशी जगमोहन लाल को एक पत्र लिखकर सूचित किया था –

प्रिय जगमोहनलाल जी

एक सप्ताह हुआ, हम लोग आबूरोड से अपने गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द जी के साथयहाँ सकुशल पहुँचे हैं। वे मुम्बई से हम लोगों से मिलने खरारी आये थे। तीन वर्ष के बिछोह के बाद हम उनसे मिलकर अत्यन्त हर्षित हुए, मगर उनको रुग्ण देखकर बड़े खिन्न भी हुए। वे दीर्घकाल से सीने के दर्द से कष्ट भोग रहे हैं, जिससे उनके सुदृढ़ स्वास्थ्य को काफी क्षति पहुँची है। ये तिब्बत गये थे और लगातार चार वर्ष से अधिक भयंकर ठण्ड में रहे। तीन वर्ष पूर्व कश्मीर के रास्ते वापस लौटते समय उनको सहसा ठण्ड लग गयी। हम उन्हें कुछ दिन तक स्वास्थ्यकर स्थान में ठहरने का परामर्श देते हैं। कहा गया है कि विशेषत: वर्षा-काल में, स्वास्थ्य की दृष्टि से शेखावाटी एक उत्तम स्थान है और सरदार भूरासिंह जी (जिनके साथ हम फिलहाल ठहरे हैं) के साथ, उनके अनुरोध पर वे मलसीसर जाने का इरादा रखते हैं। हम लोगों ने उनको निर्देश दिया है कि मलसीसर जाने के रास्ते में वे कुछ दिन आप लोगों के बीच बितावें। वे एक सप्ताह या इसके आगे-पीछे इस स्थान से प्रस्थान करेंगे। वे बड़े बुद्धिमान हैं और हम आशा करते हैं कि आप उनके सत्संग से अत्यधिक लाभान्वित होंगे।

हम लोग शीघ्र ही वृन्दावन जी के लिए प्रस्थान करेंगे। आप सबका क्या हाल है? कृपया सूचित करें कि स्वामीजी से और कोई समाचार मिला है क्या? और कृपया हमें उनका

४. जीवन्मुक्त तुरीयानन्द, स्वामी जगदीश्वरानन्द, प्र.सं., पृ. ३०-३१

५. 'स्मृतिकथा', पृ. १०४

पता दे दें, ताकि समय-समय पर हम उनसे पत्र-व्यवहार कर सकें। महाराजा को तथा आपको हमारा हार्दिक आशीर्वाद।

आशा है आप सब स्वस्थ और समृद्ध हैं।

आपका विश्वासी

स्वामी ब्रह्मानन्द[६]

यद्यपि स्वामी अखण्डानन्दजी की 'स्मृतिकथा' तथा कई अन्य स्थानों पर तीनों गुरुभाइयों के जयपुर राज्य के सेनापति सरदार हरिसिंह लाड़खानी के घर ठहरने की बात लिखी है, परन्तु स्वामी ब्रह्मानन्दजी के समकालीन पत्र से ज्ञात होता है कि वे लोग मलसीसर के जमींदार सरदार भूरासिंह के आवास पर ही ठहरे थे। अखण्डानन्दजी की 'स्मृतिकथा' घटना के कई दशाब्दियों बाद लिखी गयी थी, अत: उसकी तुलना में स्वामी ब्रह्मानन्दजी का पत्र ही अधिक स्वीकार्य है। द्वितीयत: पिछली बार जब अखण्डानन्दजी जयपुर आये थे, तो उनका सरदार भूरासिंह तथा चतुरसिंह से ही परिचय हुआ था, अत: स्वाभाविक भी था कि गुरुभाइयों के साथ जयपुर आकर वे सरदार भूरासिंह के यहाँ ही ठहरते। अत: हम ऐसा मान लेते हैं कि तीनों गुरुभ्राता इस बार कुछ दिन भूरासिंहजी के साथ और कुछ दिन हरिसिंहजी की हवेली में भी ठहरे थे।

कई वर्षों तक तिब्बत आदि हिमालय के दुर्गम स्थानों में पर्यटन तथा निवास के कारण बहुत दिनों से अखण्डानन्द का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था, अत: जयपुर में रहते समय स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने आरोग्यलाभ के लिए उन्हें कुछ दिन खेतड़ी जाकर रहने की सलाह दी। अखण्डानन्दजी स्वयं लिखते हैं – "स्वामी ब्रह्मानन्द ने मुझे सलाह दी, 'तुम्हें उदर-रोग तथा सर्दी-खाँसी है, इन दोनों रोगों से मुक्त होने के लिए राजपुताना अत्यन्त उपयुक्त स्थान है। खेतड़ी के राजा स्वामीजी के शिष्य तथा परम भक्त हैं। मैं कहता हूँ, तुम वहाँ जाओ, वे तुम्हें बड़े यत्नपूर्वक रखेंगे।' यह सुनकर मैंने खेतड़ी की यात्रा की।"[७]

इस प्रकार जयपुर से स्वामी अखण्डानन्द ने खेतड़ी की ओर और उसके बाद स्वामी ब्रह्मानन्द तथा स्वामी तुरीयानन्द ने वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया।

सरदार हरिसिंह लाड़खानी

जयपुर में मलसीसर के सरदार भूरासिंह तथा सरदार हरिसिंह लाड़खानी के घर तीनों गुरुभाइयों के निवास के दौरान कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ तथा चर्चाएँ हुई होंगी। उनमें से कुछ बातों को श्री महेन्द्रनाथ दत्त ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी से सुनकर लिखा है – "सरदार हरिसिंह की तपस्वी राखाल (ब्रह्मानन्द जी) के प्रति विशेष श्रद्धा थी। एक दिन वे घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़े तपस्वी राखाल महाराज से आशीर्वाद माँगते हुए बोले, 'देखिए, मेरे दादाजी की लड़ाई में मृत्यु हुई। मेरे पिता के शरीर पर भी तलवार के चोट के अनेक निशान थे। परन्तु मैं अपने वंश का एक ऐसा अयोग्य पुत्र हूँ कि मैंने अपने वंश का नाम डुबा दिया; मेरे शरीर पर तलवार का एक भी चिह्न नहीं है। लोगों के सामने अपने वंश का परिचय देते समय मेरा सिर लज्जा से झुक जाता है। आप आशीर्वाद दीजिए कि मैं युद्ध में ही मारा जाऊँ।' राखाल महाराज यह सुनकर स्तम्भित रह गये – राजपूतों का क्या ही जातिगत भाव है! इन्होंने धन की कामना नहीं की, केवल इतनी ही आकांक्षा है कि वंश-परम्परा के अनुसार केवल युद्ध में प्राणत्याग कर सकें। राखाल महाराज ने अपने विवेक के अनुसार आशीर्वाद दिया था। बाद में हरिसिंह ने अफगानिस्तान के एक युद्ध में अंग्रेजों की ओर से अत्यन्त वीरता के साथ युद्ध किया था और युद्ध में विजय भी प्राप्त की थी। सरदार हरिसिंह के जीवन की यह घटना विशेष रूप से विचारणीय है। इससे राजपूतों की मनोवृत्ति का सही परिचय मिलता है, क्योंकि राजपूत लोग हँसी-मजाक में भी यह कहकर उल्लास-ध्वनि करते हैं – 'राजपूत होके रण जो छोड़े, कौआ भी उसका मांस न खावे।' अर्थात् जो राजपूत होकर भी रणभूमि से पीठ दिखाकर भाग आता है, वह इतना घृण्य है कि मर जाने पर कौआ भी उसका मांस नहीं खाता।"[८]

खेतड़ी में अखण्डानन्द

खेतड़ी जयपुर से ८० मील दूर स्थित है। वर्षा आरम्भ होने के बाद अखण्डानन्द खेतड़ी पहुँचे और राजा का विनम्र भाव तथा श्रद्धापूर्ण आचरण देखकर वे मुग्ध हो गये। एक महीने के भीतर ही वे पूर्णत: स्वस्थ हो उठे और राजा के निजी ग्रन्थागार में जाकर थियोडोर पार्कर की ग्रन्थावली, भारत का इतिहास तथा संस्कृत काव्य-साहित्य आदि के ग्रन्थों का अध्ययन करते रहे। शुद्ध हिन्दी न बोल पाने के कारण एक दिन राज-दरबारियों ने उनका उपहास किया। इस कारण उन्होंने 'भाषा-भास्कर' नामक व्याकरण लेकर हिन्दी भाषा का गम्भीरता से अध्ययन करना आरम्भ किया।

वृन्दावन से अद्वैतानन्द जी को पत्र

स्वामी ब्रह्मानन्द जी तथा तुरीयानन्द जी ने २२ अगस्त १८९३ को वृन्दावन से स्वामी अद्वैतानन्द जी (काशी) के नाम बँगला में एक पत्र लिखा था, जिससे तीनों गुरुभाइयों के राजस्थान-प्रवास पर कुछ और बातें ज्ञात होती हैं – "गोपाल

६. Swami Vivekananda : A Forgotten Chapter of His Life, Beni Shanker Sharma, 2nd Ed., 1982, P. 176-77

७. 'स्मृतिकथा', पृ. १०४

८. अजातशत्रु श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानन्द महाराजेर अनुध्यान, (बँगला ग्रन्थ), महेन्द्रनाथ दत्त, पृ. ५६-५७

दादा, काफी दिनों बाद तुम्हारा आशीर्वादी पत्र पाकर हम लोग अत्यन्त आनन्दित हुए हैं। जब हम मुम्बई में थे, तब नरेन्द्रनाथ से मिलकर बड़े आह्लादित हुए थे। इसके बाद वे स्वयं हम लोगों को आबू पहाड़ पर रखने की व्यवस्था कर गये थे। वहाँ तीन महीने बिताने के बाद नीचे उतरकर हम गंगाधर (अखण्डानन्द) से मिले और एक साथ जयपुर गये। वहाँ हम पन्द्रह दिन ठहरे। करीब एक माह पूर्व इस धाम में आये हैं, शीघ्र ही व्रज के ग्राम में जाने की इच्छा है। गंगाधर खेतड़ी में है। उसका पत्र भी मिला है, सकुशल है। ...''[९]

इन समकालीन पत्रों से विदित होता है कि – (१) अप्रैल से जून के दौरान ब्रह्मानन्द तथा तुरीयानन्दजी आबू में रहे। (२) जून के उत्तरार्ध में स्वामी अखण्डानन्द आबू रोड स्टेशन पर आकर इन दो गुरुभाइयों से मिले और एक साथ जयपुर की ओर चले। (३) ये लोग लगभग ४ जुलाई को जयपुर पहुँचे। वहाँ १५-२० दिन ठहरे। (४) लगभग १९-२० जुलाई को अखण्डानन्द जी खेतड़ी की ओर तथा बाकी दोनों गुरुभाई वृन्दावन की ओर रवाना हुए।

वृन्दावन से मुंशी जगमोहन लाल को पत्र

वृन्दावन में लगभग एक माह बिताने के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द तथा तुरीयानन्द जी ने वहाँ से खेतड़ी के मुंशी जगमोहन लाल को एक पत्र और लिखा –

वृन्दावन, कालाबाबू का कुंज
३० अगस्त '९३

प्रिय जगमोहन लाल जी,

आपका २५ तारीख का पत्र मिला। हम लोग जब आपको लिखने की सोच रहे थे, तभी यह पत्र आ पहुँचा। यहाँ आये हमें एक माह से अधिक हो चुका है और हमारा स्वास्थ्य भी पहले से अच्छा है। शरीर तथा मन – दोनों ही दृष्टियों से यह स्थान हमारे लिये बड़ा उपयुक्त रहा है और हम इसे जल्दी छोड़ने के इच्छुक नहीं हैं। हमारे मन में व्रज के गाँवों में जाकर, कुछ काल तक वहीं रहने की इच्छा है। हमने सुना है कि वह और भी स्वास्थ्यकर तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से समृद्ध है। कुछ दिनों के भीतर ही हमारा वनयात्रा आरम्भ करने का विचार है, जिसमें व्रज के गाँवों की परिक्रमा की जाती है। परन्तु चूँकि हम वर्तमान में कलकत्ते लौटने का विचार छोड़ने जा रहे हैं, हम आपसे एक बात पूछना चाहते हैं – और वह है कलकत्ते जाने के लिये हमने जो पैसे लिये थे, उनके विषय में। अब हम उसका क्या करें। यदि आप हमें इस सम्बन्ध में कुछ उचित और उपयुक्त संकेत दे सकें, तो हम बड़ी प्रसन्नता (तथा राहत) महसूस करेंगे।

हम अपने आदरणीय तथा प्रिय गुरुभाई स्वामी विवेकानन्द जी के बारे में शुभ संवाद पाकर परम आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। हाँ, स्वामी अखण्डानन्द जिस वचन से बद्ध हैं, उसे पूरा करने के लिये उनके लिये मलसीसर जाना आवश्यक है। आपका हाल-चाल कैसा है? यहाँ पर आजकल बहुत गर्मी पड़ रही है। परन्तु बीच-बीच में जोरों की वर्षा हो जाती है। महाराज तथा आपको हमारा स्नेहपूर्ण आशीर्वाद तथा हार्दिक शुभ-कामनाएँ।

आशा है आप सकुशल तथा सानन्द होंगे।

आपके विश्वासी
स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी तुरीयानन्द[१०]

उपरोक्त पत्र से पता चलता है कि अगस्त के अन्त तक अर्थात् पिछले एक माह से अखण्डानन्द जी खेतड़ी में ही थे और मलसीसर नहीं जा सके थे।

मलसीसर में अखण्डानन्द

खेतड़ी में लगभग डेढ़ माह बिताने के बाद अखण्डानन्द जी मलसीसर गये। उन्होंने लिखा है – ''बाद में खेतड़ी राजा के सम्बन्धी भूरासिंह के निमंत्रण पर मैंने मलसीसर जाकर उनके घर चातुर्मास बिताया और दो माह एक जैन साधु के समाधि-मन्दिर में निवास तथा माधुकरी किया। चातुर्मास के दौरान मैं वेदान्त, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा का अध्ययन किया करता और जैन साधु के मन्दिर में पण्डित सीताराम के पास जाकर नियमित रूप से शंकर-दिग्विजय की व्याख्या सुनता। सीताराम ने बताया कि ठाकुर के भक्त विख्यात नैयायिक पण्डित नारायण शास्त्री ने काफी काल पूर्व सर्वप्रथम वहाँ श्रीरामकृष्ण देव को अवतार के रूप में प्रचारित किया था। वे राजपुताना के शेखावाटी प्रदेश के ही व्यक्ति थे।

''राजपुताना में आठ महीने रहकर विभिन्न ग्रामों में भ्रमण करके मैंने धनी सरदारों तथा निर्धन प्रजा की दशा देखी। मैं गरीब प्रजा के दु:ख दूर करने के उपाय सोचता रहा और उसी को मानव-जीवन का प्रमुख कर्तव्य मानकर उसी कर्तव्य को पूरा करने का संकल्प किया। अब तक मुझे हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान हो चुका था। मैंने गरीब प्रजा के अन्न-वस्त्र का अभाव, प्रकाश तथा वायु से रहित घरों में निवास, उनके अर्थ-शोषण के द्वारा धनिकों के भोग-विलास का वर्णन करते हुए – ''प्रजा के प्रति राजा का क्या कर्तव्य है?'' – इस विषय पर खेतड़ी-नरेश को हिन्दी में एक सुदीर्घ पत्र लिखा।''[११]

❖ (क्रमशः) ❖

९. उद्बोधन, वर्ष ६८, संख्या २, फाल्गुन १३७२, पृ. ६३

१०. खेतड़ी पेपर्स १९९९

११. 'स्मृतिकथा' पृ. १०५
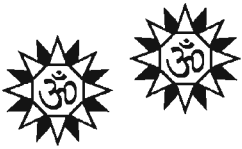
पत्रों में स्वामीजी के संस्मरण (२)
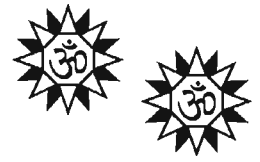
भगिनी निवेदिता

(धन्य थे वे लोग, जिन्होंने स्वामीजी के काल में जन्म लिया तथा उनका पुण्य सान्निध्य प्राप्त किया। उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोगों ने अपनी अविस्मरणीय स्मृतियाँ लिपिबद्ध की हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत संस्मरण अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ से गृहीत तथा अनुवादित हुआ है। – सं.)

१०. *अमेरिका, १८ अक्तूबर १८९९* : शुक्रवार को दोपहर में भोजन के समय स्वामीजी श्रीरामकृष्ण के बारे में बोलने लगे। उन्होंने स्वयं को इस बात के लिये धिक्कारा कि उन दिनों पाश्चात्य प्रभाव ने उनके मन पर ऐसा अधिकार जमा लिया था और उसे ऐसा विषाक्त कर दिया था कि वे सर्वदा यही देखते और पूछते रहते थे कि रामकृष्ण सचमुच ही 'पवित्र' हैं या नहीं। छह वर्षों के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये व्यक्ति 'पवित्र' ही नहीं, बल्कि पवित्रता की प्रतिमूर्ति हो चुके हैं। रामकृष्ण आनन्द तथा मौज से परिपूर्ण थे, जबकि स्वामीजी की दृष्टि में तब भी पवित्रता की कल्पना इससे बिल्कुल भिन्न थी!

बाद में, सम्भवत: बोअर युद्ध के प्रसंग में, वे विभिन्न राष्ट्रों की भूमिका के विषय में बोलने लगे। इसके बाद जब हम शुद्र की समस्याओं पर चर्चा करने लगे, जिसका समाधान पहले यहाँ (अमेरिका में) होना है, तो उनके चेहरे पर एक नई चमक आ गयी, मानो वे सचमुच ही भविष्य में झाँक रहे हों; वे राष्ट्रों के सम्मिश्रण, महान् उथल-पुथल और उस भयंकर उलट-फेर के बारे में बोलने लगे, जिनके द्वारा आनेवाले युग का निर्माण होगा। ग्रन्थों से उद्धरण देते हुए वे बोले – "कलियुग के घनीभूत होने के ये ही लक्षण हैं – जब धन-देवता की पूजा होगी, जब 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की नीति चलेगी और लोग दुर्बलों का उत्पीड़न करेंगे।"

एक बार भोजन के समय श्रीमती बुल* ने स्वामीजी की ओर उन्मुख होकर कहा कि कविताओं में उनकी प्रतिभा पूरी तौर से व्यक्त नहीं हो पाती, बल्कि वे उनके सम्मान को हानि ही पहुँचाती हैं। उन्होंने बताया कि उनके पति कभी भी अपने संगीत की समालोचना के बारे में संवेदन-शील नहीं थे। समालोचना की तो वे अपेक्षा ही करते थे। वे जानते थे कि उनके संगीत में कमियाँ हैं। परन्तु सड़क-अभियांत्रिकी के विषय में वे अति भावुक थे और उस विषय में उन्हें आसानी से सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता था। हम लोग आनन्द लेने के लिये धर्माचार्य के रूप में स्वामीजी की बेपरवाही और चित्रकार के रूप में उनके अभिमान के विषय में उन्हें चिढ़ाने लगे। इस पर वे सहसा बोल उठे – "देखो, एक चीज है, जिसे प्रेम (Love) कहते हैं और एक अन्य चीज है जिसे अभिन्नता (Union) कहते हैं। यह अभिन्नता प्रेम से बड़ी है। मैं धर्म से प्रेम नहीं करता, मैं इससे अभिन्न – एकाकार हो गया हूँ। यह मेरा जीवन है; कोई व्यक्ति उस चीज से प्रेम नहीं करता, जिसमें उसने अपना पूरा जीवन खपा दिया है, जिसमें उसने कोई वास्तविक उपलब्धि हासिल कर ली हो। हम उसी चीज से प्रेम करते हैं, जो तब तक हमसे अभिन्न नहीं हो सका है। तुम्हारे पति सर्वदा संगीत का अध्ययन करते रहे और उन्हें संगीत से प्रेम नहीं था; उनका प्रेम तो अभियांत्रिकी से था और उस विषय में वे अपेक्षाकृत कम जानते थे। भक्ति तथा ज्ञान के बीच यही भेद है; और इसीलिये ज्ञान का स्थान भक्ति के ऊपर है।"

पूरी सुबह वे चंगेज खान के अधीन मुगल सेनाओं के अभियान के बारे में बोलते रहे। यह नियम (धर्म) के विषय में हिन्दुओं की उस धारणा पर चर्चा से आरम्भ हुआ, जिसके अनुसार वह राजाओं का भी राजा है और वह कभी सोता नहीं। उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दुओं के वेदों में इसका सच्चा स्वरूप निरूपित हुआ है, जबकि अन्य राष्ट्र इसे केवल एक अनुशासन के रूप में ही जानते थे।

रविवार के दिन शाम को हम तीन जन एक अतिथि के साथ उसके घर गये। वहाँ हम लोग उच्च स्वर में 'नारी' पर शापेनहावर के विचार पढ़ रहे थे। लौटते समय हमने देखा कि अद्भुत चाँदनी छिटकी हुई है और हम मौन भाव के साथ पैदल चलती हुई एवेन्यू तक आयीं; ऐसा लग रहा था कि मानो कोई हल्की सी आहट भी उस निस्तब्धता को भंग कर सकती है। इस पर स्वामीजी बोले – "भारत में जब कोई बाघ रात के समय अपने शिकार के पीछे चलता है, तो उसके पंजे या पूँछ से यदि जरा भी आवाज
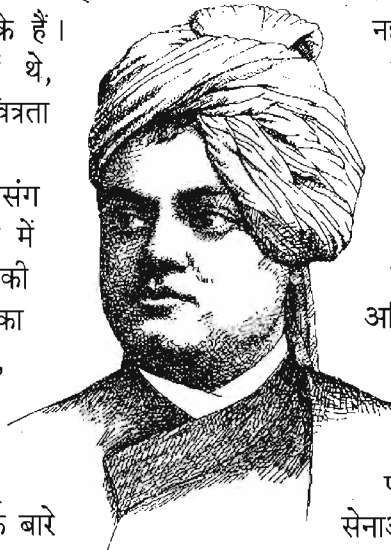
* उनके पति श्री बुल नार्वे के सुप्रसिद्ध वायलिन-वादक थे – अनु.

निकलती है, तो वह उसे इतना काटता है कि उससे खून निकल आता है।'' फिर उन्होंने बताया कि पाश्चात्य महिलाओं को सीखना होगा कि किस प्रकार मौन रहकर सौन्दर्य का रसास्वादन किया जाय और अन्य समय के लिये उसे मन में संरक्षित रखा जाय।

एक दिन अपराह्न के समय सब कुछ इतना शान्त था कि लग रहा था मानो हम भारतवर्ष में हों। जो लोग अद्वैतवाद तथा वैदिक साहित्य में रुचि रखते थे, उनके साथ तुलना करते समय मुझे अपने विषय में हीनता का बोध हुआ करता था, परन्तु आज उन्होंने उस दूसरे (द्वैत) भाव का भी कैसा अद्भुत निदर्शन किया।

यह रामप्रसाद के एक भजन से आरम्भ हुआ और मैं तुम्हारे लिये उस दिन की सारी बातों का पूरा विवरण देने का प्रयास करूँगी। भावार्थ –

जिस देश में रात नहीं होती,
मुझे उसी देश का एक आदमी मिला है ।
अब मेरे लिये दिन क्या और संध्या भी क्या !
संध्या आदि सारे अनुष्ठान
अब मेरे लिये बन्ध्या (निरर्थक) हो गये हैं ।
मेरी नींद खुल चुकी है ।
अब मैं भला और कैसे सो सकता हूँ !
मैं योग और याग में जाग रहा हूँ ।
माँ, योगनिद्रा को तुझे वापस देकर
मैंने निद्रा को ही सदा के लिये सुला दिया है ।
नूपुर में ताल मिलाकर
मैंने उस ताल का एक गाना सीखा है;
वह ताल – 'ता धिम, ता धिम' –
ध्वनि के साथ बज रहा है ।
एकाग्रता को मैंने अपना महान् गुरु बनाया है ।
कवि रामप्रसाद कहते हैं कि रे मन,
इशारे से ही मेरी बात को समझ ले ।
जिस तत्त्व को मैं माँ कहकर पुकारता हूँ,
षड् दर्शन भी जिन काली को नहीं जान पाते,
उसका रहस्य, क्या सबके सामने प्रकट कर दूँ !

उन्होंने और भी गाया –

हे शिव को मोहित करनेवाली माँ,
तूने पूरे संसार को ही भुलावे में डाल रखा है ।
मूलाधार रूपी महाकमल पर बैठी हुई
तू वीणा बजाती रहती है ।
यह शरीर ही तेरी वह महान् वीणा है,
और इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना उसके तीन तार हैं,
तीन गुणों के भेद के अनुसार, महामंत्र के सुर में
तू तीनों सप्तकों में संचरण करती रहती है ।

श्रीरामकृष्ण देखते कि उनके भीतर से एक श्वेत धागे-सी किरण निकल रही है, जिसके अन्तिम छोर पर एक ज्योतिपुंज है। वह ज्योतिपुंज खुल जाता और उसके भीतर हाथ में वीणा लिये हुए जगदम्बा दीख पड़तीं। इसके बाद वे वीणा बजाने लगतीं; वे ज्यों-ज्यों उसे बजाती जातीं, त्यों-त्यों वे देखते कि वह संगीत क्रमश: पक्षियों, पशुओं तथा ब्रह्माण्डों में परिणत होता जाता और सब कुछ सुव्यवस्थित होता जाता। इसके बाद माँ वीणा बजाना बन्द कर देतीं और सब कुछ लुप्त हो जाता। वह प्रकाश क्रमश: क्षीण से क्षीणतर होता जाता और अन्तत: एक ज्योतिपुंज मात्र बच रहता। फिर वह किरण भी क्रमश: छोटा होता जाता और अन्तत: सब कुछ उन्हीं के भीतर विलीन हो जाता।

इसका वर्णन करते हुए स्वामीजी बोले – ''अहा, कैसे-कैसे अद्भुत दृश्य मेरे सामने प्रकट होते, और मेरे जीवन का सर्वाधिक अद्भुत दृश्य था – दक्षिणेश्वर के विशाल वृक्ष के नीचे फैले अन्धकार में छायी वह पूर्ण निस्तब्धता, तो केवल सियारों के चिल्लाने की आवाज से ही भंग होती। रात-पर-रात हम वहीं बैठते, पूरी रात बीत जाती, वे मुझसे बातें करते रहते। उस समय मैं एक बालक मात्र था। गुरु को सर्वदा शिव मानना होगा और सर्वदा उनकी शिव के रूप में पूजा करनी होगी, क्योंकि वे शिक्षा देने के लिये वृक्ष के नीचे बैठे थे और उन्होंने अज्ञान का नाश कर दिया था। व्यक्ति को अपने सारे कर्म उन्हें समर्पित कर देना होगा, अन्यथा पुण्य भी एक बन्धन हो जायेगा और नये कर्मों की सृष्टि करेगा; इसीलिये हिन्दू लोग किसी को एक गिलास पानी देते हुए भी कहते हैं – 'यह विश्व को' या 'जगदम्बा को' समर्पित करता हूँ। एक ही व्यक्ति हैं, जो बिना किसी अनिष्ट के सब कुछ ग्रहण कर सकते हैं, जो चिर काल से अक्षय, अव्यय तथा अविकारी हैं और जिन्होंने जगत् का सारा विष पीकर स्वयं को नीलकण्ठ बना लिया है। अपने सारे कर्म शिव को अर्पित कर दो।''

इसके बाद वे त्याग-वैराग्य के प्रसंग में कहने लगे कि अपनी युवावस्था में ही इसे स्वीकार कर लेना कितना उत्तम है ! वार्धक्य में संन्यास लेना बड़े दु:ख की बात है। जो लोग वृद्धावस्था में इसे अपनाते हैं, वे केवल अपनी मुक्ति ही साधित कर सकते हैं; वे गुरु नहीं हो सकते, दूसरों पर अनुकम्पा नहीं कर सकते। जो लोग युवावस्था में ही इस मार्ग को अपना लेते हैं, वे लोग अपना स्वार्थ त्यागकर अनेक लोगों को भवसागर के पार ले जा सकते हैं।

इसके बाद वे मेरे स्कूल के प्रसंग में बोले – ''मार्गट, तुम बालिकाओं को अपनी इच्छानुसार सब तरह की शिक्षा प्रदान करो। केवल अक्षर-ज्ञान पर सिर मत खपाओ। इसका कोई खास महत्त्व नहीं है। जी भर कर उन्हें रामप्रसाद, रामकृष्ण, शिव तथा काली का ज्ञान दो। और इन पाश्चात्य

लोगों से प्रवंचना मत करना, उनके सामने ऐसा भान मत करना कि तुम बालिकाओं की औपचारिक शिक्षा के लिये धन जुटा रही हो। कहना कि तुम प्राचीन आध्यात्मिकता की शिक्षा देना चाहती हो और उसके लिये भिक्षा मत माँगो, बल्कि सहायता की माँग करो। याद रखो कि तुम जगदम्बा की सेविका मात्र हो और यदि वे कुछ भी नहीं भेजतीं, तो उन्हें धन्यवाद दो कि उन्हें तुम्हें मुक्त कर दिया।''

११. *अमेरिका, २७ अक्तूबर १८९९* : कल हम तीनों एक साथ बैठी थीं, तभी स्वामीजी आये और बोले – ''चलो, हम थोड़ी बातें करें।'' हम लोगों ने रामायण पर चर्चा की। मैं तुम्हें एक बड़ी विचित्र बात बताती हूँ। जब सदानन्द रामायण के बारे में बोलते, तो मुझे लगता कि हनुमान ही उसके सच्चे नायक हैं; और जब स्वामीजी उस पर बोलते, तो लगता कि रावण ही उसका केन्द्रीय चरित्र है। उन्होंने हमें बताया कि श्रीराम को 'नील-कमल-लोचन' कहा जाता है। उन्होंने सीता को वापस पाने के लिये जगदम्बा से प्रार्थना की।* परन्तु रावण ने भी जगदम्बा से प्रार्थना की थी। राम जब माँ के पास गये, तो देखा कि रावण उनकी गोद में बैठा हुआ है। उन्हें लगा कि माँ की कृपा पाने के लिये उन्हें विशेष कुछ करना होगा। अत: उन्होंने संकल्प किया कि माँ की सहायता पाने के लिये वे १०८ नीले कमलों से उनकी मूर्ति की पूजा करेंगे। हनुमान जाकर पूरे कमल जुटा लाये और श्रीराम 'महाशक्ति का आवाहन' करने लगे। (वे शरद् ऋतु के दिन थे, जबकि माँ की पूजा वसन्त ऋतु में हुआ करती है, अत: श्रीराम की पूजा की स्मृति में ही तब से जगदम्बा की पूजा शरद् ऋतु में ही हुआ करती है।) श्रीराम माँ के चरणों में नीले कमल चढ़ाने लगे। वे एक सौ सात कमल चढ़ा चुके थे और एक कमल खो चुका था (उसे माँ ने छिपा दिया था)। परन्तु श्रीराम दृढ़प्रतिज्ञ थे। वे हार माननेवाले न थे। उन्होंने एक छुरी मँगवायी और नीले कमलों की संख्या पूरी करने हेतु जब वे अपनी एक आँख को ही काटकर निकालने जा रहे थे, तभी माँ प्रकट हो गयीं। उन्होंने प्रसन्न होकर महानायक को आशीर्वाद दिया और अस्त्रयुद्ध में वे ही विजयी हुए। वैसे रावण केवल श्रीराम के अस्त्रों के कारण नहीं, बल्कि अन्तत: अपने भाई के विश्वासघात के कारण पराजित हुआ था।

स्वामीजी बोले – ''परन्तु एक दृष्टि से वह विश्वासघाती भाई भी महान् था, क्योंकि उसे श्रीराम के दरबार में रहने का सौभाग्य मिला था। अपने पति तथा पुत्र का वध करने वाले वीर का मुख देखने के उद्देश्य से रावण की विधवा उसी दरबार में आयी। श्रीराम तथा उनके सभी दरबारी उनका स्वागत करने को खड़े हो गये, परन्तु उन्होंने बड़े ही विस्मयपूर्वक देखा कि वहाँ तो वैभवपूर्ण राजमहिषी के स्थान पर हिन्दू विधवा के वेश में एक साधारण-सी महिला खड़ी थी। आश्चर्यचकित होकर उन्होंने विभीषण से पूछा – ''यह महिला कौन है?'' उत्तर मिला – ''महाराज, यही वह सिंहिनी है, जिसके पति तथा शावकों से आपने उसे वंचित कर दिया है! वे आपका दर्शन करने आयी हैं।''

नारीजाति के आदर्श के विषय में स्वामीजी कैसी महान् धारणा का पोषण करते हैं! ऐसी अद्भुत धारणा हमें शेक्सपियर में, एस्चिलस के एंटीगान या सोफोक्लेस के एल्सेस्टिस में भी नहीं मिलती। इस आदर्श के विषय में उन्होंने मुझे जो कुछ बताया, उन्हें जब मैं पढ़ रही थी, तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि यह सब, इसका प्रत्येक शब्द, पूरे विश्व के, परन्तु प्रथमत: तथा मुख्यत: उनके अपने देश की भावी नारियों के लिये विश्वास से परिपूर्ण है; उस आदर्श के अनुरूप कोई अपना जीवन गढ़ सकता है या नहीं, यह एक तुच्छ बात प्रतीत होती है।

एक रात वे भक्ति के महान् भाव से अभिभूत थे और हमें ऋषीकेश तथा वहाँ प्रत्येक संन्यासी के द्वारा बनायी जानेवाली कुटिया के बारे में बताने लगे। वे बोले कि शाम के समय सभी संन्यासी जाज्वल्यमान धूनी के चारों ओर अपने-अपने आसन पर बैठते हैं और धीमे स्वर में उपनिषदों पर चर्चा करते हैं। ''क्योंकि ऐसी मान्यता है कि व्यक्ति को संन्यास लेने के पूर्व ही सत्य का बोध हो जाना चाहिये। बौद्धिक रूप से वह शान्ति में प्रतिष्ठित हो चुका होता है, केवल अनुभूति ही बाकी रह गयी है, अत: सारे तर्क-वितर्क की आवश्यकता समाप्त हो चुकी है और अब उसे ऋषीकेश के पर्वतों के अँधियारे में धूनी के किनारे बैठकर उपनिषदों पर चर्चा मात्र करनी है। फिर क्रमश: आवाजें बन्द हो जाती हैं और निस्तब्धता छा जाती है। प्रत्येक संन्यासी अपने-अपने आसन पर सीधा होकर बैठा रहता है और उसके बाद वे बिना कोई आवाज किये एक-एक कर उठकर अपनी-अपनी कुटिया में चले जाते हैं।''

एक अन्य समय वे बोले – ''हिन्दू धर्म का एक महान् दोष यह है कि इसमें केवल त्याग के आधार पर ही मुक्ति की व्यवस्था दी गयी है। इसके फलस्वरूप गृही लोग हीन भावना के शिकार होते हैं। वे अपने को कर्म में आबद्ध समझते हैं। त्याग के बारे में वे सोच भी नहीं सकते। परन्तु वस्तुत: त्याग ही एकमात्र नियम है। यदि कोई सोचता है कि वह इसके अतिरिक्त कुछ कर रहा है, तो यह उसका भ्रम मात्र है। हम सभी इस महान् ऊर्जाराशि को

* यह घटना कृत्तिवास द्वारा रचित बँगला रामायण में वर्णित है। इसी कथानक के आधार पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि 'निराला' ने 'राम की शक्तिपूजा' शीर्षक के साथ एक सुदीर्घ कविता लिखी है। – अनु.

उन्मुक्त करने के लिये संघर्ष कर रहे हैं। इसका एकमात्र तात्पर्य यही है कि हम लोग यथासाध्य शीघ्रतापूर्वक मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जो बलवान अंग्रेज आज पूरी पृथ्वी का मालिक होने की इच्छा कर रहा है, वही वस्तुत: मृत्यु की ओर जाने के लिये सर्वाधिक संघर्ष कर रहा है। आत्मरक्षा का प्रयास भी त्याग की ही एक प्रणाली है। जीने की इच्छा भी मृत्यु से प्रेम की एक प्रणाली है।''

स्वामीजी थोड़ी देर तक सिक्खों तथा उनके दस गुरुओं के बारे में बातें करते रहे और उन्होंने ग्रन्थ साहब से हमें गुरु नानक के जीवन की एक घटना बतायी। उन दिनों वे मक्का गये हुए थे और वहाँ की काबा मस्जिद की ओर पाँव फैलाये लेटे हुए थे। ईश्वर के स्थान की ओर पाँव किये देखकर क्रुद्ध मुसलमान उन्हें जगाने और जरूरत हुई तो मार डालने के लिये उनके पास आये। वे चुपचाप उठे और सहज भाव से बोले, ''तो फिर मुझे वह स्थान दिखा दो, जहाँ ईश्वर नहीं हैं, ताकि मैं अपने पाँव उधर ही कर सकूँ।'' और उनका यह मृदु उत्तर ही काफी था।

१२. *अमेरिका, ४ नवम्बर १८९९* : गुरुवार की शाम हम दो जन बड़ी गम्भीरतापूर्वक बातें कर रही थीं, तभी स्वामीजी आये और हमारी चर्चा में जुड़ गये। इसी समय उन्होंने पहली बार द्रोह, अपने रोग तथा विश्वासघात के बारे में बातें कीं। अन्य बातों के साथ उन्होंने कहा कि वे अब भी एक संन्यासी ही हैं, अत: वे किसी भी हानि की परवाह नहीं करते, परन्तु द्रोह से वे आहत हो जाते हैं और विश्वासघात से उन्हें काफी चोट पहुँचती है।

बोअर युद्ध की घटनाओं ने मुझे विचलित कर दिया था। यह बड़ी विचित्र बात है कि कैसे एक राष्ट्र का भाग्य किसी व्यक्ति के कर्म को प्रभावित करता है और जनरल ह्वाइट जैसे व्यक्ति के लिये विनाशकारी सिद्ध होता है! हिन्दू कहते हैं कि साम्राज्य को इंग्लैंड ने नहीं, महारानी विक्टोरिया ने जीता है; और आज भी बोअर युद्ध जैसी एक घटना में, जिसमें कितने ही योद्धा खेत हो चुके हैं, कोई भी व्यक्ति इसके परिणाम की भविष्यवाणी नहीं कर सकता, क्योंकि भाग्य-गगन में एक नये तारे का उदय हुआ है और सब कुछ उसी के द्वारा परिचालित होगा। सब कुछ उसी के द्वारा निर्धारित होगा, न कि सैनिकों की संख्या, उनके अस्त्र-शस्त्र या किसी अन्य दृश्यमान तत्त्व के द्वारा। काल की बिसात पर महान्-से-महान् लोग भी अन्धे प्यादों जैसे प्रतीत होते हैं। क्यों ठीक है न? जो हाथ उन्हें परिचालित करता है, वह अदृश्य है; केवल किसी ऋषि के नेत्रों के समक्ष ही बीच-बीच में उसका कोई कारण झलक उठता है। और जो व्यक्ति इस खेल में चकनाचूर हो जाता है, लगता है कि एकमात्र वही मूर्ख बनने से बच गया।

कृष्ण और रुक्मिणी के बारे में बोलते समय स्वामीजी ने बताया कि हमारे भीतर सर्वदा दो प्रकार की प्रवृत्ति होती है – एक प्राधान्य देने की और दूसरी अनुमोदन करने की। हम बहुधा कामनाओं से वशीभूत हो जाते हैं, पर कल्याण ही हमारा एकमात्र मार्गदर्शक होना चाहिये। इसीलिये ज्ञानी व्यक्ति कुछ भी पसन्द नहीं करता, बल्कि सब कुछ साक्षी भाव से देखता है। जीवन-नाट्य में मनुष्य को अपनी भूमिका निभाना आसान लगता है, परन्तु कोई चीज उनके हृदय को पकड़ लेती है और तब वह अपनी भूमिका नहीं निभा पाता। सम्पूर्ण जीवन एक नाटक हो जाय, कुछ भी प्रिय न हो, सर्वदा अपनी भूमिका निभाते रहो।

इसके बाद वे पुन: उमा-महेश्वर पर चर्चा करने लगे। वे कहा करते हैं, ''इसके सामने सभी पौराणिक कथाएँ म्लान हो जाती हैं।'' शिव के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा, ''गुरु युवा हैं और शिष्य वृद्ध हैं'', क्योंकि भारत में जो व्यक्ति अपनी युवावस्था में ही त्याग का जीवन अपना लेता है, वही सच्चा गुरु होता है, परन्तु धर्म सीखने का सही समय वृद्धावस्था ही है। इसके बाद उन्होंने हमें कहा कि इस ब्रह्माण्ड में एकमात्र निरापद आश्रय को हम अपने समस्त पूर्व कर्म उन शिव को समर्पित कर दें। उमा ने ब्राह्मण से कहा था, ''यदि वे ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, तो फिर श्मशान में क्यों रहते हैं?''

दोपहर को भोजन के समय मैंने हँसते हुए उनसे तुम्हारे पत्र की बात कही कि तुम 'कुछ भी और किसी को भी' नहीं चाहती। इस पर स्वामीजी ने मेरी ओर देखा और बोले – ''हाँ, बिल्कुल ठीक, वह कुछ भी नहीं चाहती। मनुष्य के जीवन में आनेवाली यह अन्तिम अवस्था है। भिखारी को भिक्षा तथा अपमान की अपेक्षा रहती है; परन्तु जो कुछ भी नहीं माँगता, उसे अपमान नहीं मिलता।'' वे बोले कि नाम तथा धन से घृणा की बात वे जीवन भर दुहराते रहे हैं, परन्तु इसका वास्तविक तात्पर्य समझना उन्होंने अभी-अभी आरम्भ किया है।

❖ **(क्रमश:)** ❖

माँ की स्मृति-सुधा (उत्तरार्ध)

स्वामी वासुदेवानन्द

माँ श्री सारदा देवी दैवी मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। हमारे लिए बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

उद्‌बोधन भवन में एक बार नीचे हम लोग खूब शोरगुल कर रहे थे। इस पर गोलाप-माँ ने माँ से कहा – "तुम्हारा लड़कों पर कोई नियंत्रण ही नहीं है। ठाकुर लड़कों को कैसा नियंत्रण में रखते थे! किसी को जरा-सा भी इधर-उधर करने की छूट नहीं थी।" माँ बोली – "क्या करूँ बेटी, **मैं तो किसी में कुछ बुरा ही देख नहीं पाती, तो नियंत्रण क्या करूँगी? मैं माँ हूँ न! मैं भला नियंत्रण क्या करूँगी? मैं झाड़ पोंछकर स्वच्छ कर लेती हूँ।** ये ठाकुर के लड़के हैं, इन पर नियंत्रण करना है – कहने से क्या होगा! वे स्वयं सब ठीक कर लेते हैं। उनके आत्मविभोर प्रेम से ही सब सीधे हो जाते हैं। हमारे ठाकुर प्रेममय हैं, उनमें कोई कठोर या रूढ़ भाव नहीं है। जब लोग कहते हैं – "ठीक है, इसका फल भगवान देंगे।" पर मैं ठाकुर से प्रार्थना करती हूँ – 'ठाकुर, निर्बोध सुबोध – सभी का भला करो।' लड़कों से कहती हूँ – **'किसी से ईर्ष्या मत करो, ईश्वर से भी न्याय करने को मत कहो; बल्कि प्रार्थना करो कि अत्याचारी का भी मंगल हो।'** ईश्वर का न्याय बड़ा पक्का होता है, जरा-सा भी इधर-उधर होने की गुंजाइश नहीं। पर उनकी दया की भी कोई सीमा नहीं है।"

एक बार कुछ लोग मिलकर एक व्यक्ति के खिलाफ झूठा प्रचार कर रहे थे। यह सब सुनकर माँ ने रासबिहारी महाराज से कहा – "उसे हौज से जल निकालकर उन लोगों पर छिड़कने को कहो, नहीं तो वे लोग दग्ध हो जायेंगे।"

एक व्यक्ति बड़े चंचल स्वभाव का था। माँ ने उससे थोड़ा स्थिर होकर ध्यान-जप करने को कहा। वह बोला – "माँ, मन स्थिर न हो, तो क्या करूँगा?" माँ ने कहा – "ध्यान करना कठिन है, हम स्त्रियों का तो जप से ही सब हो जाता है, न हो तो तुम लोग भी वही करो। थोड़ा स्थिर होकर जप करना पड़ता है। दस-बीस हजार जप रोज करके देखो, कैसे मन स्वयं ही नहीं झुक जाता; यदि न झुके तो कहना! साधु-संन्यासी के सिवा अन्य लोगों के लिये ध्यान कर पाना बड़ा कठिन है। केवल पुरुष होने से ही नहीं होगा, मन में बल चाहिये, वैराग्य होना चाहिये; निर्वासना तथा भगवान से प्रेम न होने पर ध्यान होना बड़ा कठिन है। ध्यानसिद्ध चार प्रकार के होते हैं – (१) जो जन्म से ही पुण्य लेकर आये हैं। (२) जो गुरु के उपदेश को मानकर विविध प्रकार के अभ्यास करके ध्यानसिद्ध हुए हैं। (३) फिर ठाकुर कहते थे – 'कृपा-सिद्ध'। गुरु ने कृपा करके उनके मन को संसार से उठा दिया है। उनका मन पानी पर कमल के फूल की तरह तैरता रहता है। ये कृपा-सिद्ध हैं। और (४) ठाकुर कहते थे – 'सहसा-सिद्ध'। जैसे व्यक्ति को किसी कारण से दूसरे की सम्पत्ति मिल जाय। इनकी भी पूर्वजन्म की कोई तपस्या रहती है, परन्तु किसी मोह में पड़कर बहुत दिन से प्रारब्ध भोग हो रहा था; ज्योंही प्रारब्ध कटा, त्योंही मानो राह चलते-चलते बहुमूल्य हीरा पड़ा हुआ मिल गया।

"ठाकुर तो इस बार दया करके लोगों के कल्याण के लिये कठोर तपस्या कर गये। उनके शरीर पर केवल हड्डी और चमड़ा रह गया था, तो भी उन्होंने लोगों का पाप लेकर रोग भोग किया। **उनके प्रति भक्ति-श्रद्धा-विश्वास रखने से, उनका नाम-जप, उनकी लीला का ध्यान करने से कुण्डलिनी आनन्दित होकर स्वयं ही उठेंगी,** जरा-सी भी कठोरता नहीं करनी पड़ेगी। यह कलियुग है, इस युग में लोग क्या सत्ययुग-त्रेतायुग की तरह तपस्या कर सकेंगे? इस युग में प्राण अन्नगत हैं। ठाकुर का नाम लो, देखोगे कि वे खाने-पीने की सब व्यवस्था कर देंगे। ठाकुर का नाम लेने से इस बार किसी को कभी अन्नाभाव नहीं होगा। वे मोटे अन्न तथा मोटे वस्त्र की व्यवस्था कर गये हैं। गुरु-ईश्वर की सहायता के बिना क्या कोई अपने आप बन्धन खोल सकता है? इसलिये **ठाकुर अति कठोर तपस्या करके उसका फल एकत्र करके अपने आनेवाले भक्तों के लिये रख गये हैं।** वे तो कृपा करके दरवाजे पर ही खड़े हैं, अब तुम्हारे दरवाजा खोलते ही सब कुछ हो जायेगा।"

व्यक्ति सोचने लगा – एक बार भगवान आये और सत्य के लिये खुशी-खुशी सलीब पर चढ़कर जीवों के पापों के प्रायश्चित रूप उस त्याग का फल विश्वासी भक्तों के लिये रख गये। ... इस बार उनकी कठोर तपस्या, व्रत, साधन-भजन

– सब कुछ भक्त और ज्ञान-पिपासुओं के लिये है। उनकी बातें अभी भी कानों में प्रतिध्वनित हो रही हैं। **विश्वासी भक्तों के जरा-से साधन-भजन से, 'रामकृष्ण'-नाम श्रवण से कुण्डलिनी स्वयं ही आनन्दित होकर जाग उठेंगी।** भोर हो गया है; उठो, द्वार खोल कर देखो, सामने ही सूर्य खड़े हैं!

एक बार मुझे इन्फ्लूएंजा हुआ। मैंने माँ से कहा – "एक तो ऐसे ही मन स्थिर नहीं होता और ऊपर से तबीयत खराब होने पर तो मन जरा भी बैठना नहीं चाहता।" माँ बोलीं – "देखो, मन का दो भाग करना पड़ता है। उसका एक भाग मानो विवेकी है और दूसरा भाग छोटे बच्चे की तरह अविवेकी। विवेकी मन माता-पिता की भाँति हमेशा अविवेकी मन के पीछे लगा रहेगा; थोड़ा भी उल्टा-सीधा करने से उसे अनुशासित करेगा, डाँट-फटकार लगायेगा; देखते नहीं माता-पिता कैसे शरारती बच्चे को डाँटते-फटकारते हैं। देखोगे, इस प्रकार कुछ दिन अभ्यास करने से वश में चला आयेगा। परन्तु अविवेकी मन में यदि बहुत दिन के अभ्यास के फल-स्वरूप किसी विषय में दृढ़ संस्कार पैदा हो जाय, तो कितना भी तिरस्कार करने के बावजूद वह जाना नहीं चाहता। तब उस दुर्बल मन के लिये ठाकुर से प्रार्थना करोगे, इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। वे ईश्वर हैं, सब कर सकते हैं; वे एक साँचा तोड़कर दूसरा नया साँचा गढ़ सकते हैं। देखती थी कि ठाकुर की इच्छा के सामने मनुष्य का मन मानो गीली मिट्टी के लौदे के समान हो जाता था; और वे लोगों को जैसी अपनी इच्छा, वैसा ही गढ़ लेते थे।"

उद्बोधन में एक दिन शक्ति तत्त्व पर चर्चा चल रही थी। एक जन आकर बोले – "महाशय, रहने दीजिये वह सब, कुछ ठाकुर पर बोलिये, सुना जाय।" तभी योगेन-माँ स्नान करके कमरे में आयीं। बोलीं – "ठाकुर की चर्चा शुरू करने पर पहले ही तो शक्ति-तत्त्व की बात उठती है। जब वे तीव्र व्याकुलता के साथ काली-मन्दिर के तलवार को अपने गले से लगाकर बोले – 'दर्शन देना है, तो दे, नहीं तो गला काट लूँगा', तब माँ तत्काल प्रकट हो गयीं। ... जगत् का आवरण हट गया। सब चिन्मय हो उठा! केवल मूर्ति ही नहीं, पूजा के उपकरण तक सब चिन्मय!"

मैंने कहा – "महापुरुष महाराज ने एक बार बताया था कि एक दिन वे और (राखाल) महाराज ठाकुर के कमरे में बैठे थे। ठाकुर खाट पर और ये लोग नीचे चटाई पर बैठे थे। संध्या होते ही मन्दिर में आरती के झांझ-घण्टे बज उठे। वे लोग आरती देखने उत्सुक होने लगे। तभी देखा – सामने माँ काली हैं! ठाकुर महाराज से बोले – "तू मेरा व्रज का राखाल है, तेरे प्रति मेरा वात्सल्य भाव है।" योगेन-माँ बोलीं – "मथुर बाबू ने देखा कि ठाकुर अपने कमरे के उत्तर-पूर्व की ओर के बरामदे में टहल रहे हैं। जब सामने से आ रहे होते, तो शिव दिखते और जब मुड़कर लौटते, तो देखते कि बिखरे केशोंवाली माँ काली जा रही हैं। जो राम हुए थे, जो कृष्ण हुए थे, वे ही इस युग में रामकृष्ण हुए हैं। भगवान योगमाया से युक्त होकर आविर्भूत हुये थे। आयान घोष को उनकी बहन कुटिला ने बताया कि उनकी पत्नी राधा, कृष्ण के साथ वन में चली गयी है। यह सुनकर आयान हाथ में तलवार लेकर निकल पड़े कि यदि सचमुच ऐसा हुआ तो वे राधा को काट डालेंगे। वन में जाकर उन्होंने देखा कि राधारानी वहाँ खड्ग-मुण्डधारी माँ की पूजा कर रही हैं। तब बोले – "क्यों रे कुटिले, कृष्ण कहाँ है, यहाँ तो मैं कपालिनी काली को देख रहा हूँ।" श्रीकृष्ण को अपनी इष्ट मूर्ति के रूप में देखकर आयान आनन्दित होकर लौट आये।

श्रीकृष्ण, श्रीचैतन्य और श्रीरामकृष्ण को छोड़ किसी अन्य अवतार में उनके योगमाया-समावृत रूप का उल्लेख नहीं है। चैतन्यदेव ने चन्द्रशेखर के घर में चण्डी का रूप धारण किया था। श्रीचैतन्य भागवत (मध्यलीला, अध्याय १८) में लिखा है –

क्षण भर के लिये वे
गोपीनाथ (मूर्ति) को अपनी गोद में लेकर
महालक्ष्मी के भाव से खाट पर चढ़ गये।
सभी लोग हाथ जोड़े उनके सम्मुख बैठ गये।
गौरांग श्रीहरि बोले – मेरी स्तुति पढ़ो।
सभी समझ गये कि
इन पर माँ का आवेश हुआ है।
लोग स्तुति पढ़ने लगे और महाप्रभु सुनने लगे।
कोई लक्ष्मी-स्तव,
तो कोई चण्डी-स्तव पढ़ने लगा।
सब लोग निज-निज मति
के अनुसार स्तुति पढ़ने लगे।

"इसीलिये भक्तगण उन्हें साक्षात् भगवान कहते हैं। ठाकुर ने कहा था – 'चैतन्य और काली एक ही बोध हो, तभी समझो कि ज्ञान हुआ है।' गोपाल की माँ हमारे ठाकुर को गोपाल के रूप में ही देखती थीं। नीरद महाराज की माँ को उनके रामकृष्णपुर के मकान में उन्हें इष्ट – रामचन्द्र का दर्शन हुआ। उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और चरणों की धूलि ली, फिर सिर उठाकर देखा तो ठाकुर है! उन्होंने हँसते हुआ पूछा, 'क्यों बहू, अब तो विश्वास हुआ?' ठाकुर को छोड़कर किसी भी देवी-देवता का चिन्तन नहीं किया जा सकता। उन सबका चिन्तन करते ही ठाकुर की बातें याद आ जाती हैं। नीरद महाराज की माँ में इस दर्शन के पूर्व तक छिन्नमस्ता का भाव था, दिन-रात हाथ से सिर पकड़े रहतीं। ठाकुर तो सर्व-देवदेवी-स्वरूप हैं। कलि काल में सभी देवी-देवता जीवों की पूजा ग्रहण करने के लिये उन्हीं का आश्रय

लेकर रहते हैं। ठाकुर ने कहा था, 'बहू (नीरद महाराज की माँ) का जन्म छिन्नमस्ता के अंश से है।' " इसी प्रसंग में बताया जा सकता है कि एक दिन ठाकुर और सिद्धेश्वरी देवी का चरणामृत – दोनों अलग-अलग पात्र में माँ के पास ले जाने पर उन्होंने कहा था – "दोनों एक ही हैं, मिला दो, अभी मिलाओ, मेरे सामने मिलाओ।" दोनों को एक में मिलाने के बाद वे शान्त हुई थीं।

गोलाप-माँ कहतीं – "कोई विपत्ति आदि या कठिन परिस्थिति आने पर माँ ज्ञानी की तरह व्यवहार करतीं। ठाकुर की बीमारी के समय जब उन्होंने तारकेश्वर में धरना दिया था, तब उन्हें कई हण्डियों के फूटने की आवाज सुनाई दी थी; अर्थात् देहत्याग का अर्थ है पंचकोष-रूपी हण्डियों का फूटना। उसके भीतर जो था, वह यथावत् रह गया। केवल भक्तों के लिये वे एक दिव्य शरीर का निर्माण करके कुछ दिन लीला करते हैं। इस आवाज को सुनने के बाद माँ को लगा – कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? उसी समय एक दिन माँ ने सपने में देखा, माँ-काली गर्दन टेढ़ी किये हुए हैं। माँ ने पूछा – "माँ, गर्दन टेढ़ी करके क्यों खड़ी हैं?" माँ काली ने कहा –"उसके (ठाकुर) इसके (गले के घाव) कारण। मेरे गले में भी बहुत पीड़ा है, इसीलिये।" ठाकुर के देहत्याग के बाद माँ ने रोते हुए कहा था – "मेरी माँ-काली, तुम मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चली गई।"

एक बार माँ ने रासबिहारी महाराज[७] से कहा था – "**यह दुनिया स्वप्नवत् है। भाव, लीला आदि सब स्वप्नवत् है। तुम मेरे साथ बातें कर रहे हो – यह भी स्वप्न ही है। एकमात्र ठाकुर ही सत्य हैं।**" मैंने पूछा – "पंचकोष टूट जाने के बाद उन्हें ब्रह्म-स्वरूपता प्राप्त हो गयी, तो फिर जो 'लीला-शरीर' की बात सुनने में आती है, वह क्या है?" माँ बोलीं – "सच्चिदानन्द ही उनका स्वरूप है, परन्तु कभी-कभी वे दिव्य शरीर निर्माण करके भक्तों के साथ लीला करते हैं।" इस प्रसंग में गोपाल-माँ बोलीं – "जो जैसे आधार का है, माँ उसे उसी के अनुसार बताती हैं। ठाकुर मुझसे (गोलाप-माँ) कहते, 'श्याम-ज्ञान-ही-ज्ञान है, बाकी सब अज्ञान है। जगत्, खेल, लीला – सब सत्य हैं।' "

मैंने रासबिहारी महाराज से सुना है कि एक दिन (काशी में) उन्होंने माँ से कहा था – "माँ मैं निर्वाण नहीं चाहता, नहीं तो मैं तुम्हें नहीं पाऊँगा।" सुनकर माँ ने कहा – "बुद्धू लड़के! निर्वाण ही तो उनका स्वरूप है।"

गोलाप-माँ बोली – "ठाकुर के देहत्याग के बाद उनकी अस्थियों के लिये भक्तों में विवाद होने लगा। माँ बोलीं, 'देख गोलाप, कैसी विचित्र बात! ऐसे सोने के आदमी चले गये, उन्हें नहीं ढूँढ़ते, राख के लिये झगड़ रहे हैं।' "

उद्‌बोधन में देहत्याग के कुछ दिन पहले गोलाप-माँ ने एक दिन मुझे बुलाकर कहा – "देखो हरिहर[८] मुझे लगता है कि अब यह शरीर नहीं रहेगा, बारम्बार देखती हूँ – रुद्राक्ष पहने त्रिशूल लिये एक गैरिकधारिणी महिला मेरे शरीर से निकलकर चली जा रही है। और उसके बाद देह मानो एक शव के समान पड़ा रह जाता है।"

* * *

माँ के देहत्याग के बहुत बाद की बात है। एक बार मन बहुत चंचल हो उठा। ध्यान, जप-तप – मानो सब कुछ यांत्रिक (Mechanical) होने लगा। करना ही होगा, यही सोचकर यथासमय किये जा रहा था। सोचा, 'देखूँ, यदि माँ कुछ कहें' – सोचकर मैंने 'माँ की बातें' ग्रन्थ खोला। खोलते ही जहाँ दृष्टि पड़ी, देखा कि लिखा है – "क्या किसी को प्रतिदिन ईश्वर का दर्शन होता है? ठाकुर कहते थे, 'बंशी डालने पर किसी दिन मिला, किसी दिन नहीं मिला, तो क्या इसी कारण चेष्टा छोड़ देनी होगी?' ... इतना चंचल होने से कैसे चलेगा? जो मिला है, उसी में लगे रहो। अन्य कोई तुम्हारा हो या न हो, मैं तो तुम्हारी माँ हूँ ही। ठाकुर की बात याद नहीं? – जिसने उनका आश्रय लिया है, उसके समक्ष वे अवश्य प्रगट होंगे, और नहीं तो अन्तिम दिन वे स्वयं आकर सबको ले जायेंगे।"

गदाधर आश्रम की बात है। एक दिन एक भक्त ने पूछा – "माँ क्या अब भी आपको उपदेश देती हैं।" मैंने सिर हिलाकर कहा – "हाँ, देती हैं।"

– "लेकिन अब तो वे स्थूल शरीर में नहीं हैं?"

– "स्थूल शरीर में उन्होंने जो उपदेश दिये, वे तो पुस्तकों में मुद्रित हैं। परन्तु अब जो उपदेश देती हैं, वह प्रतीकोपदेश (symbolic spiritual instructions) के रूप में होता है। प्रतीक का आवरण हटाते ही उसमें से एक बहुत बड़ा सत्य अभिव्यक्त हो उठता है।"

– "वह कैसे?"

– "जब चटगाँव से लेकर कोलकाता तक* बम गिरने लगे, तो कोलकाता में आवश्यक वस्तुओं का बड़ा अभाव हो गया। बीच-बीच में नल का पानी तक बन्द हो जाता। ऐसा लगने लगा कि अब आश्रम कैसे चलेगा? और फिर भवन (गदाधर आश्रम) भी पुराना था! सपने में देखा – श्रीमाँ – गोद में गणेश को लिये हुए हैं। तब समझ गया कि डरने की कोई बात नहीं है, माँ गोद में लिये हुए हैं।

"एक बार कृष्ण-पूजा करते समय मन में आया कि क्यों

७. माँ के एक सेवक – स्वामी अरूपानन्द

८. लेखक का पूर्व नाम था – हरिहर मुखोपाध्याय

* विश्वयुद्ध के दौरान

न पहले माँ की पूजा कर लूँ ! लेकिन उसके बाद जितनी बार ध्यान करने बैठा देखा शिव के सीने पर कृष्ण खड़े हैं। ऐसा प्रतीत हुआ कि शिव भी माँ की ही एक विभूति हैं। परन्तु उसी दिन आधी रात के समय ध्यान करते समय मैंने पहली बार देखा कि शिव के सीने पर शिव ही खड़े हैं – बाघछाल पहने हैं, मगर हाथ में खड्ग तथा मुण्ड है ! समझ गया कि काली-कृष्ण एक हैं और शिव-शक्ति भी एक ही हैं।

''गीता भागवत, चण्डी का पाठ करते समय, जो तत्त्व कभी विचार में नहीं आये थे, व्याख्या करते समय पहले कभी न सुनी हुई वे सब तत्त्व की बातें अपने आप मेरी बुद्धि में जाग उठती हैं। इसे देखकर मैं अवाक् हो जाता हूँ। तब समझ जाता हूँ कि माँ ही, मेरे तथा अन्य लोगों के कल्याणार्थ वह सब उपलब्ध करा रही हैं, भीतर 'ठेल' दे रही हैं। कभी-कभी लगता है कि यह सब बुद्धि की कल्पना है, पर कभी-कभी बहुत दिनों के बाद दीख पड़ता है कि किसी पुराण या भाष्य या टीका या उपनिषद् में वह तत्त्व है। मुझे कैसे ज्ञात हुआ? कोई कहता है, 'शायद पहले कहीं पढ़ा होगा या किसी से सुना होगा, पर भूल गये थे; अब वह परिवेश देखकर जाग्रत हो उठा या बुद्धि में प्रकट हो गया।' कोई कहता है, 'शायद पिछले जन्म में पढ़ा था, अब उसी का चिन्तन करने से जाग्रत हो उठा है।' लेकिन वह सब कहाँ था? – अपनी ही Unconscious Plane (अचेतन भूमि) में। मेरी वह अचेतन भूमि किसका अंश है? – Great Unconscious (विराट् अचेतन) का ही तो न। इस विराट् अचेतन को मैं पूर्णत: जड़ नहीं मानता। वे यदि ब्रह्मशक्ति हैं, तो वे ही चैतन्यमयी भी हैं। इसीलिये कोई-कोई दार्शनिक इसे Great unconscious consciousness (विराट् अचेतन चेतना) कहते हैं। वर्तमान में जो भी नाम-रूप हैं, सब तो इन्हीं के गर्भ में हैं। वे ही तो बहुत्व के भीतर उच्च-नीच भावादर्शों की अभिव्यक्ति करती हैं। सेव पड़ा देखकर न्यूटन के मन में जो गुरुत्वाकर्षण का तत्त्व जाग उठा था, वह कुछ जागतिक घटनाओं की एक युक्तिपूर्ण व्याख्या थी। न्यूटन की तपस्या से सन्तुष्ट होकर महामाया ने उसे अपने महामौन की अतल गहराइयों से निकालकर उनकी ज्ञानभूमि में आरूढ़ कर दिया। **अहंकार-विमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते।** कितने लोग कितने ही प्रकार के प्रयोग कर रहे हैं, परन्तु कोई कुछ खोज नहीं पाता है – discovery या invention कुछ भी नहीं हो पाता है – माँ ने तमस् के रूप में उसे रोक रखा है। और जब वे उस पर प्रसन्न होती हैं, तब उसके भीतर सत्त्व के रूप में उदित होकर, वह जिसे देख नहीं पा रहा था, वह उसे दिखा देती हैं।

''मुझे लगता है कि अब मुझे माँ से इसी प्रकार उपदेश मिलते हैं।''

एक अन्य प्रकार से भी उनकी बात सुनने में आती है। – मान लीजिये कि मैं किसी बड़ी समस्या में पड़ा हूँ और उनका नाम जप करते-करते अचानक ही समाधान मिल जाता है, तब समझ जाता हूँ यह उन्हीं की प्रेरणा है। फिर मान लीजिये दो व्यक्ति बातें करते हुए चले जा रहे हैं, उनकी दो-चार बातें कानों में पड़ी – उससे जीवन का महान् संकेत मिल गया, वह भी उन्हीं की प्रेरणा प्रतीत होती है। किसी सामान्य व्यक्ति से अपने कष्ट की बात कही और उसने कोई आश्चर्यजनक समाधान बता दिया, जो उसके जैसे व्यक्ति के मुख से असम्भव प्रतीत होता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार से वे विभिन्न सन्देश देती हैं। परन्तु ज्ञानी लोग कहते हैं, यह सब un-conscious activity (अचेतन मन की क्रिया) है और बुद्धि में प्रकट हो जाती है। लेकिन मैं कहता हूँ unconscious (अचेतन मन) तो जड़ है, चेतन का आधार हुए बिना व्यक्ति किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकता।

जीव-चैतन्य को ही वह आधार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जीव की बुद्धि अज्ञान से आवृत्त है, वह न तो सर्वज्ञ है और न ही स्वतंत्र है। ऐसे अनेक विषयों का ज्ञान हुआ है, जिसकी पोथी-पत्र या विज्ञान भी कल्पना नहीं कर सकता। जीव-चैतन्य का जो आधार है, उसके भीतर कुछ समाधान हो सकता है, परन्तु बाहर की प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी जटिल समस्याओं का समाधान कैसे होता है? इसलिये मैं सोचता हूँ – माँ ही कृपा करके बीच-बीच में इस तरह से उपदेश देती हैं।''*

❖ (क्रमशः) ❖

* उद्‌बोधन, वर्ष ९८, अंक १२, पौष १४०३, पृ. ६५९-६६६, यह स्मृतिकथा स्वामी वासुदेवानन्द के विशेष स्नेहपात्र स्वामी वेदान्तानन्द के सौजन्य से मिला है। स्वामी वेदान्तानन्द कृष्णनगर (वकिलपाड़ा) श्रीरामकृष्ण आश्रम (जिला-नदिया) के अध्यक्ष हैं।
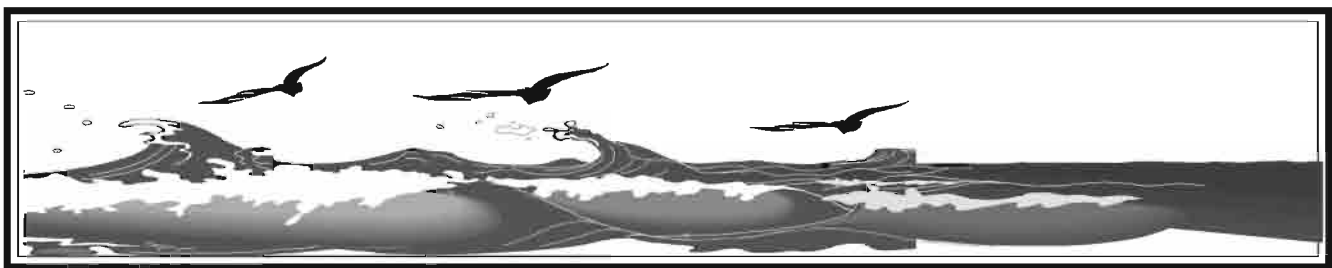
दैवी सम्पदाएँ (१५) अपैशुनम्

भैरवदत्त उपाध्याय

(गीता में आसुरी गुणों के साथ ही दैवी गुणों का भी निरूपण किया गया है। विद्वान् लेखक ने इस लेखमाला में दैवी गुणों का सविस्तार विश्लेषण किया है और विभिन्न शास्त्रों व आचार्यों के विचारों के आधार पर बताया है कि इन्हें अपने जीवन में कैसे लाया जाय। – सं.)

'अपैशुनम्' अर्थात् दूसरे की निन्दा या चुगली न करना भी एक दैवी गुण है। मानव का मूल्य उसके गुणों से होता है। गुणों में उसकी चिन्तन-पद्धति तथा कार्य-शैली का समावेश किया जाता है। अवगुण मानव का अवमूल्यन करते हैं। एक भी अवगुण अनेक गुणों से विभूषित मानव को अनिन्द्य सुन्दरी के ललाट पर उभरे कोढ़ के समान घृणा और बहिष्कार के योग्य बना देता है। सौ मन खाण्ड (शक्कर) को कड़ुवा करने के लिये कुटकी (एक कड़वी वनस्पति-औषधि) का एक टुकड़ा ही पर्याप्त होता है। अवगुण अवगुण है। उसमें बड़े छोटे का कोई हिसाब नहीं होता है। अवगुणों की लम्बी सूची में पिशुनता या चुगलखोरी एक ऐसा ही अवगुण है, जिससे मानव का व्यक्तित्व कलंकित और दूषित हो जाता है और समाज उससे घृणा करने लगता है।

शकुनि और माहिल नेगी – ये इतिहास-पुराणों में प्रसिद्ध चुगलखोर हैं। समाज इन्हें आज तक क्षमादान करके विस्मृत करने की उदारता नहीं दिखा सका है। तीनों ही इतने कुख्यात हैं कि यदि कहीं कोई इनके जैसा चरित्र का दीख जाता है, तो लोग उसे इनमें से किसी भी संज्ञा से विभूषित कर देते हैं। पंचतंत्र में करकट और दमनक नामक सियार चुगलखोरी के लिये कुख्यात हैं। दमनक पिंगलक नामक सिंह और संजीवक नामक बैल में फूट डलवाकर संजीवक की हत्या करवा देता है।

देखी या सुनी हुई बुराई का विज्ञापन अथवा कानाफूसी भी चुगली है।[१] एक की दो, या दो की चार लगाना चुगली का ही रूप है। यह एक प्रकार की निन्दा है, किन्तु इसमें गोपनीय आवरण में विश्वास के साथ गुप्तमंत्र-भेदन का तत्त्व प्रमुख है। इसके तीन पक्ष हैं – एक वह जिसकी चुगली की जाती है, दूसरा वह जिससे चुगली की जाती है, और तीसरा वह स्वयं – चुगली करनेवाला, चुगलखोर। चुगलखोर जन्म-जात नहीं होता, अपितु कुसंग से उसमें वह अवगुण आ जाता है। वह मनुष्य ही होता है। इसलिये उससे घृणा न करके चुगली से ही घृणा करनी चाहिये।

चुगलखोरी सकाम और निष्काम – दो भावों से की जाती है। निष्काम चुगलखोर उच्चकोटि का होता है, क्योंकि वह निस्पृह भाव से चुगलखोरी को अपना परम कर्म मानकर सम्पूर्ण समर्पण के साथ उसे सम्पन्न करता है, जबकि सकामी कामनापूर्ति तक ही सीमित रहता है। सकाम या निष्काम चुगली आत्महीनता की अभिव्यक्ति है। इससे आत्मतोष मिलता है, क्योंकि दूसरों की कमजोरियों को उजागर करने के कर्म से उसे अपनी न्यूनताओं को छिपाने तथा उन पर क्षुब्ध न होने का अवसर हाथ लग जाता है। चुगलखोरी से व्यक्ति एवं समष्टि की शान्ति भंग होती है। गलत धारणाओं और पूर्वाग्रहों का जन्म होता है। वह मानसिक अशान्ति का बीज बोकर कलह, द्वेष तथा वैमनस्य की वृद्धि करती है। हिंसा तथा प्रतिहिंसा के घी से अग्नि प्रज्वलित करती है। समाज में समरसता, सहकारिता, संयोजन और निर्माणपरक वातावरण को विनष्ट कर असामंजस्य, वियोजन तथा पृथकतावादी प्रवृत्तियों को पनपाती है। सत्य एवं न्याय का दमन होता है। अभीप्सित लक्ष्य भी नहीं मिलता।

चुगली मानसिक हिंसा है। इससे मित्र-भेद होता है। व्यक्तित्व में हीनता आती है। मन कुण्ठाओं का शिकार होता है। घृणा के दायरे बढ़ते हैं और प्रेम की सीमाएँ संकुचित होती हैं। विश्वास अविश्वास में, मित्रता शत्रुता में, प्रेम घृणा में तथा सदाशय दुराशय में बदल जाते हैं। चुगली मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी, बुराई और न्यूनता है। यह महत्तम आसुरी वृत्ति है। इसके त्याग से असुरत्व की पराजय, देवत्व का उदय और मनुष्यत्व का बोध होता है।

गीता में चुगली को आसुरी सम्पत्तियों में और चुगली न करने की प्रवृत्ति 'अपैशुनम्' को दैवी-सम्पत्तियों में परिगणित किया है। दैवी-सम्पत्ति से आत्म-कल्याण किंवा मोक्ष प्राप्त होता है और आसुरी-सम्पत्तियों से बन्धन अर्थात् दुःख प्राप्त

१. (अ) पर-रन्ध्र-प्रकटीकरणं पैशुनं तदभावः अपैशुनम्।
(ब) परोक्षे पर-दोष-प्रकाशनम् तद्वर्जनम् अपैशुनम्। (शंकराचार्य)

होता है। चुगलखोर बेनकाब होने पर कहीं का नहीं रहता। उसे अगला जन्म चमगादड़ का मिलता है। बाबा तुलसी ने इसे इस तरह अभिप्रमाणित किया है –

सबकै निन्दा जो जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं ।।

पवित्र बाइबिल में लिखा है कि जो बुराई करने से आनन्दित होते हैं, उनका मंगल नहीं होता। परमात्मा का आश्रय उसी को मिलता है, जो अपनी जीभ से किसी की भी निन्दा नहीं करता। एक सुभाषित श्लोक में कहा गया है कि व्यक्ति में यदि 'पिशुनता' है, तो फिर उसे अन्य कोई पाप करने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् उससे अपने आप ही सहज भाव से समस्त पातक आ जाते हैं –

लोभश्चेद अगुणेन किं ...
पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ।''

व्यक्ति दूसरे की निन्दा अथवा चुगली क्यों करता है? इसके अनेक मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते हैं। पिशुनक अथवा निन्दक की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है। छोटी-से-छोटी बुराई उसकी दृष्टि से नहीं बच सकती, भले ही बड़े-से-बड़ा गुण ओझल हो जाये। वह अहंकारी और महत्त्वाकांक्षी होता है। ईर्ष्या की आग उसके हृदय में जलती रहती है। इसलिये वह दूसरों की प्रगति तथा ऐश्वर्य को देख नहीं सकता। वह स्वयं तो बौना होता ही है, वह दूसरे के बड़प्पन की रेखा को छोटा करके अपनी छोटी रेखा को बड़ा बनाना चाहता है। निन्दा के द्वारा वह आत्म-प्रशंसा ही करता है। दूसरे के जिन दोषों को वह बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करता है, उससे यह बताना चाहता है कि उसमें ये दोष नहीं हैं।

परनिन्दा एक व्यसन है। एक मानसिक व्याधि और अवचेतन में अवदमित कुण्ठाओं की व्यंजना है। वे निराशा से पीड़ित होते हैं। कभी-कभी अज्ञानता अथवा गुणों की परख की योग्यता न होने के कारण भी निन्दा करते हैं।

लोग निन्दा सहन नहीं कर पाते। आत्म-प्रशंसा सबको प्रिय है। जो आत्मोन्नति चाहते हैं, जिनके जीवन का लक्ष्य सदगुणों का परिग्रह है, उन्हें परनिन्दा के दुर्गुण का परित्याग करना आवश्यक है। इसके लिये दम एवं संयम के व्रतों का पालन होना चाहिये। वाणी पर नियंत्रण, परदोष-दर्शन के स्थान पर परगुणों के परमाणुओं को भी पर्वत के समान मानकर सम्मान करना अपेक्षित है। सज्जनों की संगति, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, ईश्वर-चिन्तन और मानवीय गुणों के अनुवर्तन के प्रयास से ही पिशुनता के पातक से सुरक्षा तथा अपैशुन के दैवीगुण की साधना सम्भव हो सकती है। ❑

मनवा, भज ले राम-श्याम

राममोहन शर्मा 'मोहन'

(१)

मन, भज ले राम-रमैया को ।
भज ले कृष्ण-कन्हैया को ।।

कौशल्या-दशरथ के नन्दन ।
सीतापति रघुकुल के चन्दन ।।
जन-मन-रंजन, असुर-निकन्दन ।
मर्यादा पुरुषोत्तम - वन्दन ।।
हरिजन हृदय लगैया को ।
भजले राम-रमैया को ।।

श्री वसुदेव-देवकी नन्दन ।
बाबा नन्द-यशोदा रंजन ।।
राधा-बल्लभ कंस-निकन्दन ।
मुरलीधर मोहन जगवन्दन ।।
'गीता' पाठ-पढ़ैया को ।
भज ले कृष्ण-कन्हैया को ।।

सिया-राम हैं, राधा-मोहन ।
राधा-मोहन, सिया-राम-मन ।।
दोऊ जन, जीवन, जीवन-धन ।
'मोहन' अधम-उधारन बन्दन ।।
युग-युग जन्म लिवैया को ।
दुष्ट नाश करवैया को ।।

मन, भज ले राम-रमैया को ।
भज ले कृष्ण-कन्हैया को ।।

(१)

जीवन दिव्य बनायें

रामायण के मंच पर, जैसे 'रावण-राम' ।
वैसे ही हर जीव में, देवासुर-संग्राम ।।
देवासुर-संग्राम, राम की वृत्ति जगायें ।
संयम और साधना से सामर्थ्य बढ़ायें ।।
कह 'मोहन' राक्षसी वृत्तियाँ दूर भगायें ।
इस प्रकार अपने जीवन को दिव्य बनायें ।।

सफलता – असफलता

जियाउर रहमान जाफरी

हर मनुष्य जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहता है और इसके लिए वह कठिन-से-कठिन परिश्रम करता है। असफलता उसमें हताशा पैदा करती है और सफलता से उसमें आत्म-विश्वास बढ़ता है। सफलता एक ऐसी व्यापक चीज है, जहाँ पहुँचने के लिए हमें कई प्रक्रियाओं, कई सोपानों से गुजरना पड़ता है। कड़ी मेहनत, बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। सफलता के लिए सबसे आवश्यक है संकल्प शक्ति, निष्ठापूर्ण परिश्रम और कुछ कर गुजरने की चाहत। हिमालय का यह विशाल पर्वत न जाने कब से खड़ा है, लेकिन उस उत्तुंग शिखर तक पहुँचने की हिम्मत एडमंड हिलेरी और शेरपा तेनसिंग ने ही जुटाई और इतिहास में अमर हो गए। हमें याद रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति इस संसार में अपना भाग्य लेकर नहीं आता। हम जिसे भाग्य कहते हैं, वह इसी धरती पर उसके द्वारा किए गए कर्मों का प्रतिफल है।

सफलता-प्राप्ति के लिए सबसे आवश्यक है कि मनुष्य सर्वप्रथम अपनी रुचियों, संभावनाओं तथा क्षमताओं का अध्ययन करे और तत्पश्चात् नियमित अभ्यास करते हुए पूरी निष्ठा के साथ लक्ष्य तक पहुँचने की चेष्टा करे। हमें निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि निरन्तर अभ्यास ही सफलता का सूत्र है और आलस्य तथा कोताही इस पथ का सबसे बड़ा शत्रु है। खरगोश और कछुए की प्रसिद्ध कहानी में खरगोश छलाँगे तो मारता था, पर बीच में आलस्य में आकर सो जाता था। इसके विपरीत कछुआ धीमी चाल से निरन्तर चलता रहा और अपने लक्ष्य पर पहुँचकर विजयी हुआ। कहा भी गया है – मन्द गति से सतत तथा नियमित कार्य करनेवाला व्यक्ति विजयी होता है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सफलता का कोई शार्ट-कट रास्ता नहीं होता। इसके लिए दृढ़तापूर्वक नियमित रूप से परिश्रम करना लाजमी है। किन्तु होता यह है कि हम पूरी निष्ठा से उद्यम नहीं करते। अर्जुन की तरह हमारा लक्ष्य उस मछली की आँख पर नहीं होता। हमारी स्थिति अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करने की नहीं होती। हम अपनी असफलता का कारण खोजते हुए कभी भाग्य को, कभी काल को, तो कभी परिस्थितियों और ईश्वर को दोषी ठहराते हैं। ऐसे व्यक्ति कायर की श्रेणी में आते हैं। जेम्स जायस नामक उपन्यासकार का कथन बिल्कुल सत्य है कि व्यक्ति को सफलता अपनी वजह से मिलती है; समय, स्थान या परिस्थितियों से नहीं। आपने चींटीवाली वह कहानी तो सुनी ही होगी, जो बार-बार ऊँचाई से गिरकर भी शिखर पर पहुँचने में कामयाब हो गई। यह जरूरी नहीं कि कोई व्यक्ति पहली ही दफा में सफलता प्राप्त कर ले। कहा भी गया है कि रोम का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ था। असफलता के बाद भी सफल हो जानेवाले प्रत्याशी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपनी गलतियों से सीख लेता रहे और तदनुरूप नई रणनीति के साथ परिश्रम भी करता रहे। किसी ने कहा है – असफलता सफलता से मात्र एक पग पीछे रह जाती है। जीवन में सफलता का यह सूत्र स्मरणीय है कि असफलता के बाद भी आत्मविश्वास न खोना और उस दिशा में प्रयत्नशील रहना ही सफलता का रहस्य है। निर्वासित एकाकी श्रीराम ने अपने आत्मविश्वास के बल पर ही अहंकारी रावण को परास्त किया था। हमें जितनी बड़ी सफलता की अपेक्षा है, उसके अनुकूल परिश्रम भी करना चाहिए। एवरेस्ट पर्वत तक पहुँचने के लिए हमको हिलेरी और शेरपा तेनसिंग की भाँति तैयारी भी करनी होगी। चाँद तक पहुँचने के लिए नील आर्मस्ट्रांग बनना होगा। हमें गुलाब के फूल तक पहुँचने के लिए काँटों का सामना करना होगा। इस चेष्टा में काँटे भी चुभ सकते हैं, पर ऊँचे मूल्यों को लेकर चलनेवाले व्यक्तियों को ये कठिनाइयाँ अधिक देर तक आड़े नहीं आतीं। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसी बात को ध्यान में रखकर लिखा है –

मुश्किलें दिल के इरादे आजमाती हैं,
स्वप्न के परदे निगाहों से हटाती हैं।
हौसला मत हार गिरकर ओ मुसाफिर,
ठोकरें इंसान को चलना सिखाती हैं।।

दुनिया में ऐसा कुछ नहीं, जो मनुष्य के लिए असम्भव है। नेपोलियन अक्सर कहा करता था कि संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। उनका कहना था कि असम्भव शब्द मूर्खों के शब्दकोश में पाया जाता है। एक बार नेपोलियन की सेना आल्प्स पर्वत के पास जाकर रुक गई। नेपोलियन ने आवाज लगाई – आल्प्स है ही नहीं और सेना पर्वत के पार हो गई। लक्ष्य की प्राप्ति में अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग सफलता को अवश्यम्भावी बनाता है। हमारे पास ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जब व्यक्ति ने उत्साह के बल पर मनोवांछित सफलता प्राप्त की है। बालक श्रीकृष्ण ने आततायी महादैत्य का वध कर डाला। पाँच पाण्डवों ने मिलकर सौ कौरवों की सेना को परास्त करने का गौरव पाया। कोई भी महापुरुष सफलता की ऊँचाईयों पर एकाएक उड़कर नहीं पहुँच गए थे। परिश्रम वही सार्थक हो सकता है, जब उसकी दिशा सही हो। स्टालिन, हिटलर तथा माओत्से तुंग के बारे में कहा जाता है कि वे युद्ध में विजय की अपेक्षा युद्ध प्रक्रिया पर ज्यादा ध्यान देते थे। अपनी इसी पद्धति के कारण उन्हें सफलता मिल सकी। सफलता प्राप्त करने के लिए परिश्रम और परिश्रम को सार्थक करने के लिए संघर्ष चाहिये। संघर्ष
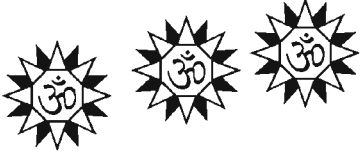
आस्था का केन्द्र बनारस

मनीष श्रीवास्तव

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में जिन केन्द्रों का बहुमूल्य योगदान रहा है, उनमें से एक है असी, वरुणा तथा गंगा के तट पर बसा नगर बनारस। बनारस की सुबह में बनारस की आत्मा बसती है। जब ब्राह्म-मुहूर्त (प्रातः ३ से ५ बजे) में स्थानीय लोगों का हुजूम गंगा-स्नान के लिए उमड़ता है, तो गंगा तट का दृश्य अनोखा ही होता है। तट से दूर किनारे पर धूनी रमाये साधुओं और उनके मुँह से निकलते हर-हर महादेव का जयघोष स्नान करते लोग तथा मंदिरों में होने वाले मंत्रोचार एवं घण्टे की आवाज उस धुँधलके में नई जान डालती है। प्राचीन काल में काशी के नाम से विख्यात, इस नगर को आज वाराणसी अथवा बनारस के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। काशी नगर २५.१८ डिग्री उत्तर अक्षांश एवं ८३.१ डिग्री पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। देवनगरी के नाम से मशहूर इस स्थल की पवित्रता एवं आध्यात्मिक महत्व का वर्णन करते हुए वेदों में लिखा गया है : **मरणं मंगलम् यत्र** अर्थात् जहाँ मृत्यु को प्राप्त करना भी शुभ है। हिन्दुओं के लिए सदियों से पवित्र रहा यह स्थान, भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा विकास के एक केन्द्र के रूप में आज भी अपने सदियों पुरानी सांस्कृतिक एकता को मजबूती प्रदान करते हुए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अग्नि पुराण, पद्म पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, लिंग पुराण, स्कन्द पुराण आदि में भी काशी का वर्णन मिलता है। स्कन्द पुराण में तो एक खण्ड का नाम ही काशी-खण्ड है। महाभारत के अनुशासन पर्व तथा विजय पर्व और रामायण में भी काशी का जिक्र किया गया है। समय-समय पर लिखे गए कई ऐतिहासिक दस्तावेजों में भी काशी का उल्लेख मिलता है, जिनमें जे. इर्विन (१८८६), एम.ए. शेरिंग (१८६८), ई.बी. हावेल (१९०५), ए. एस. अलतेकर (१९३७) प्रमुख हैं। राँची विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध मानवशास्त्री डॉ. एल.पी. विद्यार्थी के साथ माखन झा और बी.एन. सरस्वती ने काशी का मानव-शास्त्रीय अध्ययन कर 'सैक्रेड काम्पलेक्स ऑफ काशी' नाम से एक शोध-प्रबन्ध की रचना की है।

काशी के ऐतिहासिक घटनाओं को यदि हम देखें तो यहीं जैनों के ७वें तीर्थंकर स्पर्शनाथ और २३वें तीर्थकर पार्श्वनाथ का जन्म हुआ। ईसापूर्व २४० में सम्राट् अशोक ने काशी की यात्रा की थी। ५वीं शताब्दी में फाह्यान, ७वीं शताब्दी में ह्वेनसांग, १२वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य, १२९४ ई. में सन्त ज्ञानेश्वर, १४६९ ई. में गुरु नानकदेव, १४७८ ई. में वल्लभाचार्य तथा १४८५ ई. में चैतन्यदेव आदि ने यहाँ की यात्रा की अथवा यहाँ निवास किया था। १६९७ ई. में सवाई राजा जयसिंह ने यहाँ एक वेधशाला की स्थापना की थी।

बनारस ने अपने आधुनिक विकास की यात्रा १७९४ ई. में प्रारम्भ की, जब बनारस म्युनिसिपल बोर्ड का गठन हुआ। १८६२ ई. में यह शहर मुगलसराय से रेलमार्ग द्वारा जुड़ा, १८८७ में रेल सड़क मार्ग पुल का निर्माण हुआ, जो पहले डफरिन पुल और बाद में मालवीय पुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १८९७ में एनी बेसेंट द्वारा सर्वप्रथम हिन्दू कॉलेज की स्थापना की गई। फिर १९२० में महात्मा गाँधी ने काशी विद्यापीठ की आधारशिला रखी। १९२८ में पहली बार इस शहर में बिजली ने प्रवेश किया। इस प्रकार अनवरत विकास की यात्रा इस शहर में आज भी जारी है। बनारस के पूर्व भाग में प्रवाहित होनेवाली जीवनदायिनी गंगा के तट पर प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में तीर्थयात्री दर्शन एवं पवित्र स्नान के लिए आते हैं। इसी के तट पर भगवान बुद्ध, शंकराचार्य, तुलसीदास समेत कई महर्षियों ने अपनी साधनाएँ पूरी कीं। प्राचीनतम ज्ञात तथ्यों के अनुसार भारतीय संस्कृति के विकास के करीब पाँच हजार वर्षों के दौरान काशी के ये घाट श्रद्धा, विश्वास एवं आस्था के केन्द्र रहे हैं। गंगा के तट पर करीब ७१ घाट हैं, जिनमें कुछ का धार्मिक महत्व है, तो कुछ का ऐतिहासिक। प्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने महर्षि विश्वामित्र को अपना सर्वस्व दान कर दिया था और उसके बाद जब उनका शरीर मात्र ही अपना बचा, तो उसे भी यहीं बेच दिया था। इसी घाट पर उन्होंने पत्नी से अपने पुत्र की चिता जलाने के लिए 'कर' माँगकर अपनी स्वामिभक्ति तथा कर्तव्यपरायणता की अनोखी मिशाल पेश की थी। इसी प्रकार पंचगंगा घाट

पिछले पृष्ठ का शेषांश

प्रकृति का नियम है। अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए मनुष्य सदा से संघर्ष करता रहा है, फिर कोई सफलता इसका अपवाद कैसे हो सकती है? एक बीज जमीन पर उगने के लिए भूमि के कठोर परत से संघर्ष करता है। बारिश, पानी, ओले, तूफान से मुकाबला करता है, तब जाकर वह पुष्पित और पल्लवित हो पाता है। घर्षण द्वारा ऊर्जा की उपलब्धि के साथ विज्ञान का शुभारम्भ हुआ और प्राकृतिक आपदाओं से लड़ते हुए सभ्यता का विकास हुआ।

सफलता, अभ्यास, परिश्रम, संघर्ष, लगन और आत्म-विश्वास से ही सफलता मिलती है।

जिसका निर्माण आमेर के राजा मानसिंह ने करवाया था, वह इस क्षेत्र में सबसे ऊँची जगह पर निर्मित है, अत: यहाँ से पूरे काशी का अवलोकन किया जा सकता है। कहते हैं कि इसी घाट पर पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने यवन पत्नी के साथ गंगा में समाधि ली थी। काशी के पंचतीर्थों के अन्तर्गत यहाँ का दशाश्वमेध घाट आता है। ऐसी मान्यता है कि यहीं पर अस्सी दशाश्वमेध, मणिकार्णिका, पंचगंगा तथा वरुणा का संगम-स्थल है, जहाँ आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि प्रान्तों से आनेवाले अधिकांश श्रद्धालु आते हैं।

उपरोक्त सभी घाटों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट मणिकर्णिका घाट है, जहाँ पर भगवान शिव ने विष्णु से यह प्रतिज्ञा की थी, कि जिस किसी मृत शरीर को इस घाट पर अन्तिम संस्कार के लिए लाया जाएगा, वह मुक्ति का अधिकारी होगा। कहते हैं, इसी स्थल पर स्थित एक कुण्ड में माता सती के कानों के कुण्डल की मणि गिरी थी, इसी कारण इसका नाम मणिकर्णिका घाट हुआ। आज भी इस घाट पर प्रतिदिन औसतन ७५ से १२५ शवों का अन्तिम संस्कार किया जाता है। इस घाट पर चिता को जलाने के लिए पवित्र अग्नि यहाँ के डोम-राजा के अनुमति से ही प्राप्त की जा सकती है। कहते हैं कि ये लोग राजा हरिश्चन्द्र के पूर्व स्वामी के वंशज हैं, जिन्होंने उन्हें अपने कर्मचारी के रूप में रखा था। प्रतिदिन देश भर के विभिन्न भागों से अपने परिजनों की अस्थियाँ कलशों में लेकर गंगा में प्रवाहित करने के लिए लोग यहाँ आया करते हैं।

हिन्दुओं की धार्मिक मान्यता के अनुसार यह नगर भगवान शिव के त्रिशूल पर बसा हुआ है। यह भारतीय ज्ञान तथा दर्शन का प्रमुख स्थल रहा है। यहाँ का ज्ञान सदियों से सम्पूर्ण भारत में नैतिक तौर पर मान्य रहा है। वर्तमान में पूर्णत: विकसित स्वरूप वाली भारतीय आचार-विचार-व्यवहार, ज्ञान, दर्शन, धर्म, संस्कार आदि का मूल स्रोत काशी ही रही है। विश्व के किसी भी विद्वान् को अपने मत या सम्प्रदाय की शुद्धता एवं वस्तुनिष्ठता को प्रमाणित करने के लिये आज भी यहीं आना पड़ता है। काशी के विद्वानों की अपनी अलग ही पहचान है। काशी के पण्डे जहाँ धार्मिक क्षेत्रों में विशिष्टता रखते हैं, वहीं काशी के विद्वान् तर्क एवं शास्त्रार्थ में दक्ष हैं।

वाराणसी अपने विस्तृत भूक्षेत्र तथा मन्दिरों के लिए भी प्रसिद्ध है, जिसका रोमांच एवं पुण्य पाने के लिए प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में न सिर्फ घरेलू बल्कि विदेशी सैलानी भी आते हैं। यहाँ के मन्दिरों में सर्वप्रमुख है, **काशी विश्वनाथ जी का मन्दिर**। वाराणसी में विश्वनाथ जी के चार मन्दिर हैं। आदि विश्वनाथ, विश्वनाथ मन्दिर, नया विश्वनाथ तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित विश्वनाथ मन्दिर। प्रथम दो मन्दिरों का सम्बन्ध ज्योतिर्लिंग से है। कहते हैं कि आदि विश्वनाथ का मन्दिर पहले अपने प्रारम्भिक स्थल पर ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थापित था, परन्तु कालान्तर में यहाँ का शिवलिंग वर्तमान स्थल पर स्थापित किया गया है। यह काशी के सर्वप्रमुख मन्दिरों में से एक है। इसका निर्माण इन्दौर की महारानी अहिल्या बाई ने १७७७ ई. में करवाया था। कहते हैं कि इस मन्दिर के शिखर पर सोने की जो परत लगाई गई है, वह साढ़े बाईस मन (११२.५ किलो) की है, जिसे पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह ने १८३९ में चढ़वाया था। वाराणसी की यात्रा करनेवाले प्रत्येक यात्री की पहली इच्छा काशी विश्वनाथ के दर्शन की होती है। यहाँ वर्ष भर दर्शन के लिए श्रद्धालुओं की लम्बी कतार देखी जा सकती है। **अन्नपूर्णा मन्दिर** के बारे में कहते हैं कि माँ अन्नपूर्णा के वाराणसी में स्थित होने से इस नगर में कोई भी भूखा नहीं सोता। इस मन्दिर के अन्दर माँ अन्नपूर्णा की एक भव्य मूर्ति स्थापित है, जिसका दर्शन करने देश के कोने-कोने से लोग आते हैं। माँ की एक सोने की मूर्ति भी यहाँ है, जिसमें भगवान शंकर माँ अन्नपूर्णा से भिक्षा माँग रहे हैं।

दुर्गा मन्दिर – भी श्रद्धालु पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। **विशालाक्षी मन्दिर** – दक्षिण भारत से काशी की यात्रा करने के लिए आनेवाले अधिकांश यात्री यहाँ दर्शन अवश्य करते हैं। इनका मन्दिर भव्य एवं आकर्षक है। **कालभैरव का मन्दिर** – सन् १७१५ में बाजीराव पेशवा द्वारा इस मन्दिर का निर्माण काशी के कोतवाल के रूप में एक रक्षक की भूमिका में किया गया था। काशीवालों के बीच यह प्रचलित धारणा है कि कालभैरव के इस मन्दिर के कारण ही काशी रोगों तथा भय से मुक्त है। **तुलसी-मानस मन्दिर** – संगमर्मर के पत्थरों से निर्मित इस विशालकाय मन्दिर का निर्माण सन् १९६४ ई. में करवाया गया था। इस मन्दिर की दीवारों पर तुलसी-रचित राम-चरित-मानस और उसकी कथा को चित्रों के रूप में अंकित किया गया है। यह मन्दिर वास्तुशिल्प का अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करता है तथा यात्रियों को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। **भारतमाता मन्दिर** में भी भारत के सभी राज्यों के मानचित्र संगमर्मर पर तराश कर बनाये गये हैं। यह सम्पूर्ण उत्कीर्ण अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है। सैलानियों को मंत्रमुग्ध कर देनेवाली यह रचना वर्षभर आकर्षण का केन्द्र बनी रहती है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय – बनारस शिक्षा एवं ज्ञान

के क्षेत्र में अपनी अनोखी उपलब्धियों के लिए प्रसद्धि है। इसके प्राणरूप में यहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित है। १९१६ ई. में पं. मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित इस विश्वविद्यालय की विश्वदृष्टि को स्वयं मालवीयजी, एनी बेसेन्ट और डॉ. राधाकृष्णन् जैसे विद्वानों ने निखारा। यह एशिया का सबसे बड़ा ज्ञान-केन्द्र आवासीय विश्वविद्यालय है, जिसमें विश्व के ३२ देशों के छात्रों को अध्ययन की अनुमति प्राप्त है। यहाँ १२४ स्वतंत्र शिक्षण-विभाग हैं, जिनमें से कई को विशिष्ट अध्ययन-केन्द्र का सम्मान प्राप्त है।

बनारसी पान देश भर में सुपरिचित है। फिर एक ओर जहाँ यह बनारसी साड़ी के लिए प्रसिद्ध है, तो वहीं अपनी ठण्डई (लस्सी, शरबत आदि शीतल पेय) के लिए भी जाना जाता है। यहाँ से प्रकाशित होनेवाली धार्मिक पुस्तकों के कारण यहाँ की कचौड़ी गली अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यहाँ की गलियों का कहना ही क्या, बनारस की वास्तविक झलक और अनोखापन इन्हीं पतली-पतली अनगिनत गलियों में दिखाई देता है। काशी में परिक्रमा के बारे में भी स्कन्द पुराण में विशेष उल्लेख करते हुए मानव जीवन की सफलता के लिए परिक्रमा, साष्टांग परिक्रमा, त्रिकंठ परिक्रमा, नवदुर्गा तथा नवगौरी परिक्रमा, अन्तगृही परिक्रमा, पंचक्रोशी परिक्रमा आदि प्रमुख हैं। इन परिक्रमाओं के अवसर पर श्रद्धालुओं के अतिरिक्त बड़ी संख्या में पर्यटक भी यहाँ आते हैं। मलमास के अवसर पर की जानेवाली तीर्थयात्रा के दौरान सम्पूर्ण बनारस भक्तिमय हो उठता है। तंग गलियों में श्रद्धालुओं की भीड़ को नियंत्रण एवं व्यवस्थित करने के लिए जिला प्रशासन को विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है।

महाराजा रामनगर का किला – बनारस के अन्य दर्शनीय स्थलों में बनारस के दक्षिण में गंगातट पर स्थित रामनगर का किला प्रमुख है। १७५२ ई. में निर्मित इस किले में पुरातात्त्विक महत्त्व की अनेक प्राचीन वस्तुओं का संग्रह है, जो जनता के अवलोकनार्थ प्रदर्शित हैं। प्राचीन काशी नरेश के वंशज वर्तमान में इसी किले में रहते हैं।

बनारस के समीपवर्ती क्षेत्रों में और भी कई प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं, जिनमें बनारस से लगभग ११ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है – प्रसिद्ध **बौद्धतीर्थ सारनाथ**। बनारस के पास ही चुनारगढ़ का किला, विंध्य पर्वत पर स्थित माँ विन्ध्यवासिनी का प्रसिद्ध मन्दिर तथा अन्य कई मनोरम स्थल हैं।

❑❑❑

बोधकथा –

हमें भी जीने दो !!

आर. प्रसन्न चंद चौरड़िया

एक गाँव में एक तालाब के किनारे काफी वर्षों से बरगद का पेड़ खड़ा था। उसके पत्ते झड़ गए थे। वह अब बूढा हो चला है। कभी, अपनी जवानी के दिनों में वह हरे-भरे पत्तों से इतना लदा-फदा रहता था कि सूर्य की किरणें भी भेद नहीं पाती थीं। हजारों यात्री उसकी ठण्डी छाया में विश्राम पाते थे, पंछी आश्रय पाते थे। भाँति-भाँति के पक्षियों के चहचहाने और कोयल की मीठी कूक से वह गुंजित रहा करता था।

परन्तु न जाने कब बरगद का वह पेड़ बूढ़ा हो गया, बचे हुए सिर्फ १०-२० पत्ते हिल-डुल रहे थे। वह पुरानी यादों की सम्पदा साथ में लिए जर्जर अवस्था में खड़ा था। इतने में गाँव के कुछ शरारती लड़के खेलते-खेलते पेड़ की ओर आ निकले। उन्हें न जाने क्या सूझी कि हाथों में पत्थर उठाकर वृक्ष के उन बचे-खुचे १०-२० पत्तों को गिराने के लिए निशाना साधने लगे। पेड़ ने देखा तो काँपने लगा, जीवन के आखिरी वर्षों में पत्थरों की मार सहने की शक्ति भी नहीं बची थी। अपनी दुर्दशा की कल्पना करते हुए वह सिहर उठा और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहने लगा –

''प्यारे बच्चो, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, जिन्दगी के कुछ ही वर्ष बचे हैं। मैं शान्ति से जीना चाहता हूँ। मुझ पर रहम करो, पत्थर मत मारो।'' बच्चों के हाथ जहाँ-के-तहाँ रुक गए। वे पेड़ की बातें ध्यान से सुनने लगे। पेड़ कहता रहा – ''प्यारे बच्चो! तुम्हारे घर में भी तुम्हारे बूढ़े माता-पिता होंगे, वे भी अपने जीवन के आखिरी दिनों में सुख-शान्ति से जीने की तमन्ना रखते हैं। उम्र की छोटी होती जा रही डोर ने उनकी जरूरतें घटा दी हैं। उनकी इच्छा का ख्याल रखना। तुम्हें याद होगा – तुम्हारे माता-पिता तुम्हें बचपन में घोड़ा बनकर अपनी पीठ पर बैठाकर घुमाते थे, अपने कन्धों पर बिठाकर मेले में ले जाते थे। इस तरह वे तुम्हारी हर जिद पूरी करते थे। क्योंकि वे तुम्हें हमेशा खुश देखना चाहते थे। उन्हें तुम्हारी खुशी में अपनी खुशी नजर आती थी। अब तुम्हारी बारी है – उन्हें खुश रखना, आदर देना, उनसे मीठा बोलना। अपनी कड़वी बोली के पत्थरों से उनके हृदय को छलनी मत करना। यह बात घर के हर सदस्य को बताना। उनके उपकार को याद करते रहना।

''इसलिए प्यारे बच्चो! मेरे जिगर के टुकड़ों!! हमें शान्ति से जीने दो, हमें पत्थर मत मारो।'' वृक्ष की बातों का असर बच्चों पर पड़ा, उनके हाथों की भिंची हुई मुट्ठियों की पकड़ ढीली पड़ गई। पत्थर जमीन पर गिर कर बिखर गए। उन्हें अपने माता-पिता की सेवा का ध्यान आने लगा। उनके मन मस्तिष्क में एक बात की गूँज उन्हें बार-बार सुनाई देने लगी – ''हमें शान्ति से जीने दो! हमें पत्थर मत मारो!''

स्वामी विवेकानन्द
तकनीकी विश्वविद्यालय, भिलाई (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ की विधानसभा में पारित हुए तथा २४ जनवरी, २००५ के प्रान्त-सरकार के गजट में प्रकाशित अधिसूचना के अनुसार भिलाई में 'छत्तीसगढ़ स्वामी विवेकानन्द तकनीकी विश्वविद्यालय' की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य है – प्रदेश में डिप्लोमा, डिग्री, पोस्ट ग्रेजुएट तथा रिसर्च स्तर तक, स्थापत्य व फार्मेसी सहित इंजीनियरिंग व प्रौद्योगिकी से जुड़े सभी विषयों की सुव्यवस्थित उत्कृष्ट तथा उच्च कोटि की शिक्षा सुनिश्चित करना।

३० अप्रैल, २००५ ई. को भारत के माननीय प्रधान-मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने विश्व-विद्यालय की आधारशिला रखी। उस अवसर पर आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुये प्रधान-मंत्रीजी ने कहा – "मुझे बड़ी खुशी हो रही है कि मैं देश के लिए प्रकाश और ज्ञान के एक नए केन्द्र की स्थापना के अवसर पर आज यहाँ उपस्थित हूँ। नींव तो अनेक संस्थाओं की रखी जाती है, पर उनका महत्त्व ज्ञान के केन्द्र के रूप में नहीं होता। ज्ञान का केन्द्र उन लोगों की आशाओं और अपेक्षाओं का प्रतीक होता है, जिन्हें अज्ञान की बेड़ियों से मुक्त कराना है और प्रगति में पूरी तौर से भागीदार बनने की उनकी इच्छा को पूर्ण करना है। ज्ञान का केन्द्र अर्थात् शिक्षण-संस्था ज्ञान का प्रचार-प्रसार करती है, जो कुशल अध्यापकों के मार्ग-दर्शन में अपने लिए और समाज के लिए ज्ञान का एक खजाना उत्पन्न करती है।

"इस संस्थान ने अपना नाम भारत के एक महान सपूत, स्वामी विवेकानन्द के नाम पर रखकर अपने आपको पहले ही धन्य कर लिया है। स्वामी विवेकानन्द एक उच्चकोटि के विचारक, मानवतावादी, एक गहन धार्मिक व्यक्ति थे; परन्तु वैचारिक तौर पर वे एक सच्चे उदारवादी और आधुनिकतावादी थे। ये वे गुण हैं, जो एक विश्वविद्यालय को अपने प्राध्यापकों और विद्यार्थियों में पैदा करने चाहिए। भले ही यह आपका तकनीकी विश्वविद्यालय है और सभी संकायों के लिये अभी परिसर नहीं है। तो भी, जिन मूल्यों ने स्वामी विवेकानन्द को प्रेरित किया, उन्हीं को इस ज्ञान-मन्दिर को बौद्धिक तथा सामाजिक जीवन में मार्ग-दर्शन करना चाहिए।

"आधुनिक विज्ञान को स्वामी विवेकानन्द सच्ची धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति मानते थे, क्योंकि विज्ञान ईमानदारी-पूर्वक प्रयास के द्वारा सच्चाई को समझने की चेष्टा करता है। पण्डित नेहरू ने कहा – 'मानवतावाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमारे युग के सर्वोच्च आदर्श हैं। यद्यपि दोनों के बीच एक स्पष्ट संघर्ष दिखाई देगा, परन्तु खोजबीन की यह भावना इन दोनों दृष्टिकोणों और विज्ञान की दुनिया तथा आत्म-विश्लेषण की दुनिया के बीच की पुरानी सीमाओं को हटा देती है। मुझे उम्मीद है कि स्वामी विवेकानन्द तकनीकी विश्वविद्यालय हमारे महान् राष्ट्रीय नेताओं की अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरेगा और विज्ञान तथा मानवतावाद की भावना की हमारी समझ में काफी सुधार लाएगा।

"प्रकृति ने छत्तीसगढ़ राज्य को प्रचुर मात्रा में खनिज-सम्पदाओं से नवाजा है। यह विश्वविद्यालय आम लोगों की भलाई के लिए इन प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में सहायता करेगा। यह प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग में एक ज्ञान-आधार प्रदान करते हुए पर्यावरण-सन्तुलन को बनाए रखने में मदद देगा। छत्तीसगढ़ अन्न, दालों, फल तथा सब्जियों के उत्पादन के साथ कृषि-विकास के पथ पर भी आगे बढ़ रहा है। यह खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की शुरुआत करके रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए एक बहुत अच्छा मौका उपलब्ध करा रहा है और स्वामी विवेकानन्द तकनीकी विशविद्यालय इसके विकास के लिए आवश्यक तकनीकी सहायता मुहैया करायेगा। यह प्रशिक्षित मानव-शक्ति उत्पन्न करने का एक केन्द्र हो, ताकि यह कृषकों तथा प्रसंस्कारकों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हो सके।

"ऐसा मैं इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि विज्ञान को हमारे ग्रामवासियों और कमजोर वर्गों की जरूरतों को पूर्ण करना

चाहिये । भारत के अधिकांश लोग आज भी गाँवों में बसते हैं और अपनी रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति के लिये काफी हद तक कृषि पर निर्भर करते हैं । तकनीकी संस्थानों को अपने तकनीकी विकास कार्यक्रमों में इस ग्रामीण भारत को केन्द्र में रखना चाहिये । मैं यह दृष्टिकोण इस विश्वविद्यालय के भावी छात्रों, प्राध्यापकों तथा प्रशासकों के समक्ष इसलिये रख रहा हूँ, ताकि वे अपने अध्ययन तथा अनुसन्धान को हमारे किसानों और ग्रामीण भारत-वासियों के जीवन स्तर को सुधारने पर केन्द्रित कर सकें ।

''हम देश के विज्ञान और तकनीकी के बुनियादी ढाँचे को सशक्त बनाने का सतत प्रयास कर रहे हैं । हालाँकि हम इसके बजट-राशि में वृद्धि कर रहे हैं, पर साथ-ही हम देश में उच्च और तकनीकी शिक्षा की उपलब्धता बढ़ाने हेतु भी कटिबद्ध हैं । शिक्षा पर व्यय सकल घरेलू उत्पाद का ६% तक बढ़ाने की चेष्टा करते हुए हम यह भी सुनिश्चित करेंगे कि संसाधनों की कमी के कारण सुयोग्य विद्यार्थी उच्च तथा तकनीकी शिक्षा से वंचित न रह जायँ । हम मेधावी छात्रों के लिये आसानी से ऋण मुहैया कराना सुनिश्चित कर रहे हैं ।

''स्वामी विवेकानन्द तकनीकी विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़ राज्य के सभी इंजीनियरिंग तथा पॉलिटेक्निक कॉलेजों को स्वयं में समाहित करके पूरे छत्तीसगढ़ में तकनीकी शिक्षा की समन्वित व्यवस्था को सुनिश्चित करेगा । मुझे यह जानकर खुशी है कि राज्य में १४ इंजीनियरिंग कॉलेज और १० सरकारी पॉलिटेक्निक संस्थान हैं, जो शिक्षण के ७ स्नातकोत्तर और १६ स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम पेश कर रहे हैं । प्रौद्योगिकी की मुख्य शाखाओं के अलावा ये संस्थान जैव-प्रौद्योगिकी और इंस्ट्रूमेंटेशन इंजीनियरिंग की जरूरतों को पूरा करते हैं । छत्तीसगढ़ की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुये ये संस्थान धातु विज्ञान और खनन इंजीनियरिंग में भी डिग्रियाँ प्रदान करते हैं । मुझे इस बात की खुशी है कि इन पाठ्यक्रमों में कृषि तकनीक और पर्यावरणीय प्रदूषण का नियंत्रण भी शामिल है । नि:सन्देह इन कॉलेजों और पॉलिटेक्निकों से प्रतिवर्ष स्नातक डिग्री प्राप्त करनेवाले ६५०० विद्यार्थी इस राज्य के विकास में रीढ़ की हड्डी साबित होंगे ।

''मैं आपको एक बात से सतर्क करता हूँ । यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि ये सभी तकनीकी संस्थान निर्धारित मान-दण्डों के अनुसार चलाये जायँ और छात्रों को हम अपने पास उपलब्ध सर्वोत्तम ज्ञान उपलब्ध करायें । इसमें संसाधन बाधक नहीं हैं, बल्कि वस्तुत: यह दृष्टिकोण की बात है । छात्रों की सेवा में निरत प्रशासकों तथा प्राध्यापकों को समझना होगा कि युवा मस्तिष्कों की ज्ञान की सीमाओं का ताला खोलने के लिये वे ही जिम्मेदार हैं । प्राध्यापकों और प्रशासकों को छात्रों की सफलता में ही अपनी सफलता देखनी होगी ।

''हम सूचना पर आधारित अर्थव्यस्था के युग में रहते हैं और शिक्षा ही वास्तव में वह सशक्तिकरण है, जो हम अपने नागरिकों को दे सकते हैं, ताकि वे नये भारत का निर्माण करने की अपनी क्षमताओं को बढ़ा सकें । आज विश्व सूचना आधारित अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में हमारी क्षमताओं को मानने लगा है और यह हमारी इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी संस्थाओं के कारण ही सम्भव हो सका है । इसलिये आपके समक्ष चुनौती है कि आप इन अपेक्षाओं के अनुरूप उठें ।

''हमें वैश्वीकरण की चुनौती का सामना करने हेतु अपेक्षित मानव संसाधनों की जरूरत है । औसतन साढ़े तीन लाख से अधिक इंजीनियर और पाँच हजार पी.एच.डी विद्वान् प्रतिवर्ष हमारे विश्वविद्यालयों व कॉलेजों से डिग्री पाते हैं । ऐसे योग्य, अंग्रेजी बोलनेवाले वैज्ञानिकों और तकनीकी जनशक्ति के विशाल भण्डार से समृद्ध हमारी यह महत्त्वाकांक्षा है कि हम अनुसन्धान और विकास कार्य का एक बड़ा आधार बनें । हमें अपने देश में अनुसन्धान एवं विकास कार्यों में वैश्विक निवेश को आकर्षित करने में सक्षम होना चाहिये । हम एक सूचना आयोग की स्थापना कर रहे हैं, जिसका प्रमुख एक ऊर्जावान व्यक्ति होगा, निष्ठावान युवा लोग उसमें सहयोगी होंगे, ताकि हमारे सूचना के नेटवर्क में निहित अन्त:शक्ति का उपयोग किया जा सके और भारत सही मायने में विश्व का 'ज्ञान-वाहक' बन सके । हमारा लक्ष्य है कि विश्व के सर्वोत्तम विश्वविद्यालय और अनुसन्धान तथा विकास की प्रयोगशालाएँ हमारे यहाँ हों । हम सभी ज्ञान आधारित कार्यों की सहज पसन्द होने का लक्ष्य रखेंगे – एक ऐसी भूमिका जो भारत सदियों से निभाता आ रहा है । छत्तीसगढ़ को इस विकास की कहानी का हिस्सा बने, जो समग्र देश में फैल रही है ।

''मैं छत्तीसगढ़ का आह्वान करता हूँ कि वह देश के शेष हिस्सों के साथ शिक्षा के क्षेत्र में कन्धे से कन्धा मिलाकर चले । हम इस बात की अनदेखी नहीं कर सकते कि आज विश्व में ऐसी कोई आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था नहीं है, जिसमें कम-से-कम ८०% साक्षरता न हो । हम अपने देश के लोगों की शिक्षा और राज्य के समग्र आर्थिक विकास के बीच एक सशक्त और सकारात्मक सम्बन्ध देख रहे हैं । मुझे आशा है कि राज्य सरकार शिक्षा एवं स्वास्थ पर जरूरी ध्यान देगी और मानव क्षमताओं के निर्माण में निवेश करेगी ।

''प्रत्येक मनुष्य को समाज पर बोझ बनने से रोककर, उसे समाज की सम्पत्ति में रूपान्तरित किया जा सकता है, यदि व्यक्ति सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से सशक्त हो । आज मनुष्य की क्षमताओं में निवेश करने से बढ़कर कोई निवेश नहीं है । मुझे आशा है कि स्वामी विवेकानन्द तकनीकी विश्वद्यालय राज्य को औद्योगिक विकास के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये एक आधार प्रदान करेगा । मैं छत्तीसगढ़

के लोगों को शुभकामनाएँ देता हूँ और भविष्य में आपकी प्रगति तथा समृद्धि की कामना करता हूँ। मैं इस संस्थान से जुड़े सभी लोगों को, उनके महान् प्रयासों की सफलता के लिये शुभकामनाएँ देता हूँ। मेरी ओर से आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएँ। जय हिन्द।''

विश्वविद्यालय की परिकल्पना

यह संस्था शिक्षण, शोध तथा जन सेवा के क्षेत्र में अपनी उत्कृष्टता के लिये स्थानीय राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के सर्वप्रमुख मौलिक तथा रचनात्मक तकनीकी विश्वविद्यालयों में से एक के रूप में अपनी पहचान स्थापित करना चाहती है। हम तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों तथा आजीवन उच्च शिक्षा के इच्छुक अभियन्ताओं के लिये पहली पसन्द बनना चाहेंगे।

लक्ष्य – स्थानीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक महात्त्वाकांक्षाओं के प्रति संवेदनशील एक उत्कृष्ट बौद्धिक परिवेश में शिक्षा शोध तथा सेवा उपलब्ध कराना; ताकि ज्ञान, रचनात्मक क्षमता तथा उद्यमशील मनोवृत्ति से युक्त ऐसे छात्रों का निर्माण किया जा सके, जो वैश्विक चुनौती के परिवेश में सफल सिद्ध हो।

वैज्ञानिक तकनीकी तथा आध्यात्मिक शोधों की एकता पर विशेष बल देकर ज्ञान का समन्वित रूप प्रस्तुत करना, जो राष्ट्र की विरासत को पुर्नजीवित कर सके और संकुचित हो रहे विश्व की क्रम-वर्धमान चुनौतियों का सामना करने में व्यक्ति को सक्षम बना सके। 'विविधता में एकता' की धारणा को बनाये रखते हुये, सम्पूर्ण विश्व ही एक विराट परिवार है – इस भाव का प्रसार करना।

उद्देश्य – * इस शिक्षा का मूल आधार होगा विश्वस्तरीय उच्च तकनीकी शिक्षा द्वारा अति कुशल विशेषज्ञों का निर्माण। राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप प्रयोगमूलक ज्ञान का आदान-प्रदान और विश्वविद्यालय तथा उद्योग-धन्धों के बीच सहभागिता।

* छत्तीसगढ़ स्वामी विवेकानन्द तकनीकी विश्वविद्यालय को शिक्षा एवं ज्ञान के क्रेन्द के रूप में विकसित करना।

* उच्च नैतिक आदर्शों से युक्त ऐसे कुशल विशेषज्ञ उत्पन्न करना, जो उद्योगों की प्रथम पसन्द हों और समाज तथा राष्ट्र द्वारा भी सम्मानित हों।

* शुद्ध तथा मिश्रित विषयों पर विश्वस्तरीय विशेषज्ञ-पाठ्यक्रम उपलब्ध कराना, जो प्रयोगमूलक तथा बौद्धिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण हो।

* ऐसे पाठ्यक्रमों का विकास करना; जो स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों की वर्तमान जरूरतों की दृष्टि से प्रासंगिक हों; विषयों के सभी पहलुओं को अभिव्यक्त करते हों और क्रियात्मक चिन्तन, समस्याओं के समाधान तथा Soft Skills (लचीली कार्यकुशलता) को प्रोत्साहन देना।

व्यावहारिक तकनीकी विद्या के केन्द्र

व्यावहारिक तकनीकी के निम्नलिखित केन्द्र विकसित करने होंगे –

* Non-conventional Energy Sources (गैर-परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का केन्द्र)
* Materials Handling Technology (उपकरण/सामग्री प्रबन्धन तकनीकी का केन्द्र)
* Centre for Rural Engineering (ग्राम्य अभियांत्रिकी)
* Centre for continuing education (सतत शिक्षा केन्द्र)
* Centre for Corporate Learning (उद्योग-व्यवस्थापन विद्या का केन्द्र)
* Centre for Technology-Business-Incubation (तकनीकी एवं उद्योग के बीच अन्तर्सम्बन्धों का केन्द्र)
* Centre for propagation of Intellectual property Rights (बौद्धिक-सम्पदा अधिकारों के प्रसार का केन्द्र)
* Centre for Gem Mining & cutting (हीरे-जवाहरातों का उत्खनन तथा कर्तन-कटाई-घिसाई का केन्द्र)

विश्वविद्यालय के शिक्षण विभागों की तुलना में इन केन्द्रों की भूमिका काफी विस्तृत होगी। ये केन्द्र अन्य संस्थाओं को भी अपने प्रभावक्षेत्र में लेंगे और शोध, उत्पादन तथा प्रणाली के विकास, तकनीकी-विकास तथा तकनीकी-हस्तान्तरण को बढ़ावा देकर प्रदेश में एक प्रौद्यौगिकी संस्कृति के विस्तार में माध्यम का कार्य करेंगे। आशा की जाती है कि ये केन्द्र उद्योग जगत्, सरकार तथा समुदाय को प्रासंगिक, उत्कृष्ट, कुशल तथा समुचित सेवा प्रदान करेंगे।

विश्वविद्यालय के प्रस्तावित शैक्षिणिक विभाग

नवीन प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निम्नलिखित नौ विश्वविद्यालय शैक्षणिक विभागों का विकसित किया जाना प्रस्तावित है –

* Advanced Computer application (उच्च स्तरीय कम्पयूटर प्रयोग)
* Bio-technology (जैव प्रौद्योगिकी)
* Entrepeneurship and innovation (उद्यम तथा मौलिक शोध)
* Environmental Engineering (पर्यावरण-अभियांत्रिकी)
* Industrial product Design (औद्यौगिक उत्पाद-डिजाइन)
* Mechatronics (मेकेट्रोन्किस)
* Nano-technology (नैनो प्रौद्योगिकी)
* Opto-Electronics (प्रकाश-इलैट्रोनिक्स)
* Technology Management (प्रौद्योगिकी प्रबन्धन)

विश्वविद्यालयों के इन विभागों में PG Dip, M.E. / M.Tech, Ph.D / D.Sc. / D. Engg. उपाधियों हेतु शिक्षण एवं शोध का कार्यक्रम चलाया जायेगा। इसके पूर्व के पाठ्य-क्रमों की शिक्षा सम्बद्ध महाविद्यालयों में दी जायेगी।

विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग का उद्देश्य

* सम्बद्ध विषय में उच्चतर एवं सर्वोच्च शिक्षण तथा शोध की सुविधायें प्रदान करना।

* अपने इन विभागों के विशेषज्ञों तथा सम्बद्ध संस्थाओं के माध्यम से माँग-आधारित और उद्योग या निगमों की ओर से शोध तथा मार्गदर्शन की परियोजनाएँ स्वीकार करना।

* सम्बद्ध संस्थाओं को R & D Culture (शोध एवं विकास मनोवृत्ति), Consulting (परामर्श), Continuing education (सतत् शिक्षा) की प्रणाली को अपनाने तथा आत्मसात् करने को प्रोत्साहित करना।

* विषय के व्यावहारिक ज्ञान को बढ़ावा देने के लिये राज्य के सरकारी, ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्रों में सुनिश्चित विशेष परियोजनाओं को स्वीकार करना।

* विषय से सम्बद्ध उद्योगों की सहायता करना।

* पाठ्यक्रमों के नवीनीकरण तथा क्रियान्वयन में सहायता।

* विभाग के विकास तथा अन्य संस्थाओं को इसकी शिक्षण-प्राणाली के हस्तान्तरण का कार्य हाथ में लेना।

उद्योग तथा विश्वविद्यालय के बीच सहयोग

छत्तीसगढ़ राज्य में प्रौद्यौगिकी आधारित आर्थिक-प्रगति को बढ़ावा देने हेतु अनुकूल परिवेश स्थापित करने तथा डिग्री-धारियों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये उद्योग तथा विश्वविद्यालय के बीच परस्पर सहयोग के द्वारा पाठ्यक्रम विकास, छात्रों का प्रशिक्षण तथा मूल्यांकन और उद्योगों के लिये शोध-कार्य की व्यवस्था की गई है।

प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में प्रायोजित शोधकार्य, तकनीकी शिक्षा-प्रणालियों तथा उनके प्रायोगिक रूपों – यथा उद्योग में प्रबन्धकों की भूमिका, उत्पादित हुए माल के चयनार्थ बाजार-सर्वेक्षण आदि को संयुक्त उद्यम के रूप में ग्रहण करना।

इस हेतु प्रदेश तथा इसके बाहर के प्रमुख औद्योगिक संस्थानों के साथ MOU समझौता किया जायेगा।

इस सहभागिता के अन्तर्गत एक औद्योगिक प्रबन्धन का केन्द्र भी स्थापित किया जायेगा, जिसमें विश्वविद्यालय उद्योगों तथा निगमों द्वारा प्रायोजित पाठ्यक्रमों का संचालन करेगा।

यह सहभागिता उत्तीर्ण होने वाले छात्रों के लिये विशाल स्तर पर रोजगार के अवसर उत्पन्न करने में भी सहायक होगी। सफल तथा समर्पित शोधकत्ताओं को भी उनके लिये उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त कराना सम्भव हो सकेगा।

वर्तमान पाठ्यक्रम (Ongoing Programmes)

१. पीएच.डी./ डी.एस.सी तथा डी.टेक/ डी.इंजीनियरिंग की उपाधियों के लिये शोधकार्य

२. इन्जीनीयरिंग तथा टेक्नोलॉजी में स्नातकोत्तर उपाधि हेतु – * प्रायोगिक भू-विज्ञान * कम्प्यूटर विज्ञान तथा अभि-यांत्रिकी * वैद्युतिक अभियांत्रिकी * कम्प्यूटर विज्ञान और उसका प्रयोग * सिविल इंजीनियरिंग * रासायनिक अभियांत्रिकी * इलेक्ट्रोनिक्स तथा दूरसंचार * मेकेनिकल अभियांत्रिकी * उत्पादन अभियांत्रिकी

३. स्नातकोत्तर डिप्लोमा कोर्स – औद्योगिक सुरक्षा

४. व्यावसायिक प्रबन्धन में मास्टर डिग्री

५. कम्पयूटर-एप्लीकेशन में मास्टर डिग्री

६. अभियांत्रिकी पाठ्यक्रमों में स्नातक डिग्री * एप्लाइड इलेक्ट्रोनिक्स और इन्स्ट्रूमेंटेशन * जैव तकनीकी * सिविल इंजिनियरिंग * वैद्युतिक अभियांत्रिकी तथा इलेक्ट्रानिक्स * इलेक्ट्रानिक्स तथा दूरसंचार अभियांत्रिकी * मशीन अभियांत्रिकी * खनन अभियांत्रिकी * जैव-औषधीय-अभियांत्रिकी * रसायन अभियांत्रिकी * कम्प्यूटर-विज्ञान तथा अभियांत्रिकी * विद्युत अभियांत्रिकी * सूचना प्रौद्योगिकी * धातु अभियांत्रिकी

७. आर्किटेक्चर/स्थापत्य में स्नातक डिग्री)

८. स्थापत्य में बैचलर डिग्री (आन्तरिक सज्जा)

९. फार्मेसी में बैचलर डिग्री

१०. डिप्लोमा के पाठ्यक्रम – * सिविल अभियांत्रिकी * विद्युत अभियांत्रिकी * सूचना प्रौद्योगिकी * इंन्सट्रूमेंटेशन * पोशाक डिजाइन तथा पोषाक-निर्माण प्रौद्योगिकी * स्थापत्य * मशीनी अभियांत्रिकी * इलेक्ट्रानिक्स व दूरसंचार * संगणक विज्ञान * आधुनिक कार्यालय-प्रबन्धन * फार्मेसी – डी.फार्मा. * आन्तरिक सज्जा

विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. बी. के. स्थापक और कुलसचिव डॉ. के. डी. परमार हैं। इसके स्थापना वर्ष में ही लगभग साढ़े छह हजार छात्रों ने इसकी परीक्षाओं में भाग लिया। २००६ ई. में स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन के अवसर पर विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया, जिसमें १६ महाविद्यालयों के छात्र-छात्राओं ने विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेकर पुरस्कार प्राप्त किये। समारोह के मुख्य अतिथि थे विधान-सभाध्यक्ष श्री प्रेमप्रकाश पाण्डेय, विशिष्ट अतिथि थे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द तथा उच्च-शिक्षा मंत्री श्री अजय चन्द्राकर। यहाँ भारत का नौवाँ नैनो-टेक्नालॉजी-केन्द्र भी प्रस्तावित है। इस प्रकार विश्वविद्यालय निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। ❑❑❑